विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष–१८ जनवरी–१९९९ अंक–१

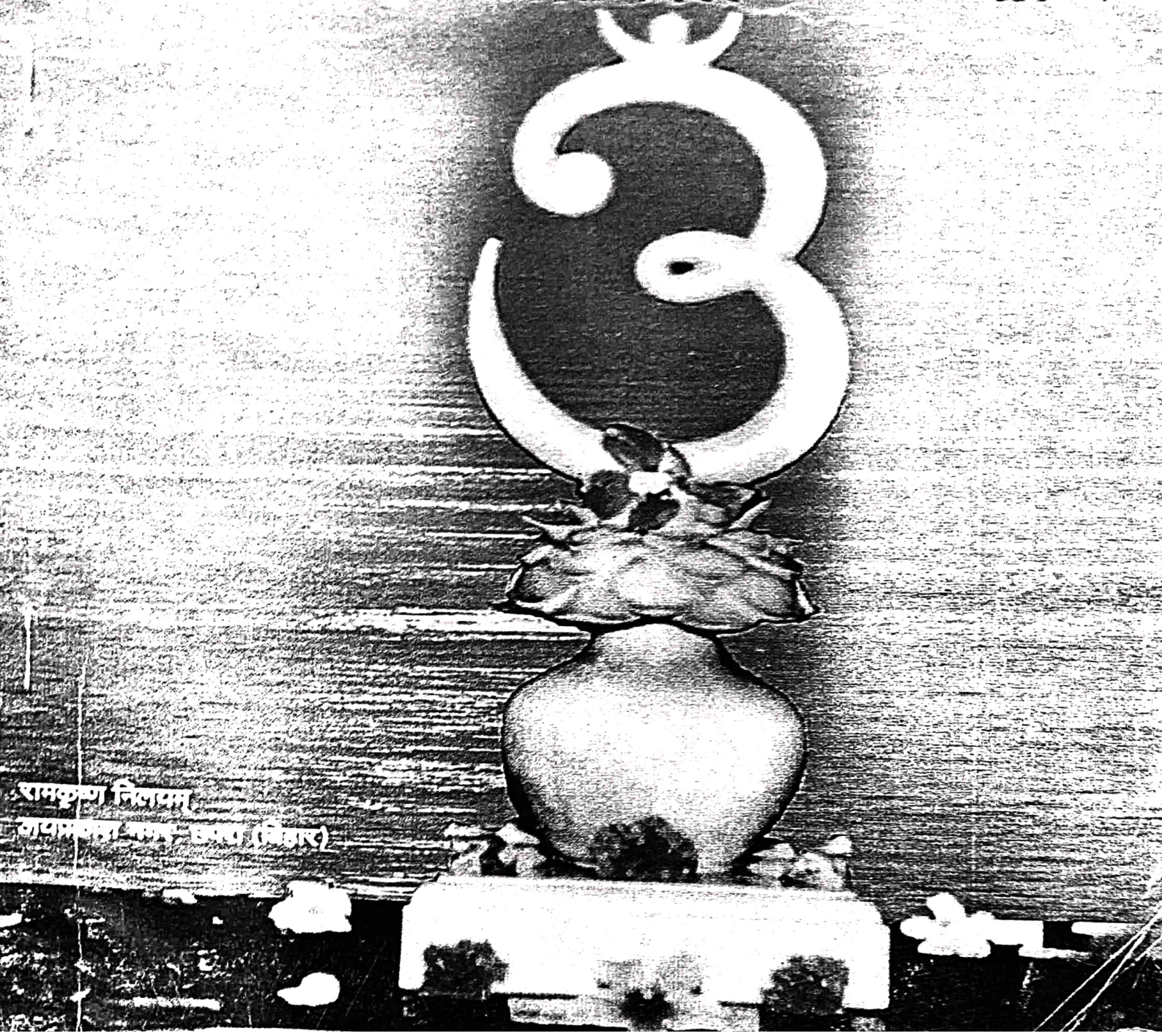

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१७१. श्री धन्नालाल अमृतलाल सोलंकी, कलवानी
१७२. डॉ० कमलाकांत, वड़ोदा (गुजरात)
१७३. डॉ० विनया पेण्डसे, उदयपुर (राजस्थान)
१७४. सन्तोष बोनी, रामवन (जम्मू एवं कश्मीर)
१७५. श्री राजोभाई बी० पटेल, सूरत (गुजरात)
१७६. श्री प्रकाश देवपुरा—उदयपुर (राजस्थान)
१७७. श्री एस० के० मुन्दरा, जामनगर (गुजरात)
१७८. डॉ० मोहन बन्सल, आनन्द (गुजरात)
१७९. अडकिया कन्सलटेन्ट्स, प्रालि० मुम्बई
१८०. सुश्री एस० पी० त्रिवेदी—रोजकोट (गुजरात)
१८१. अद्वैत आश्रम, मायावती—(उ० प्र०)
१८२. श्री शत्रुघ्न शर्मा, फतेहाबाद—(बिहार)
१८३. रामकृष्ण मिशन, शिलांग—(मेघालय)
१८४. श्री त्रिभुवन महतो, राँची—(बिहार)
१८५. रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची—(बिहार)
१८६. श्री आर० के० चौपड़ा, इलाहाबाद—(उ० प्र०)
१८७. श्री श्यामनन्दन सिंह, राँची—(बिहार)
१८८. श्री डी० आर० साहू, रायपुर—(म० प्र०)
१८९. रामकृष्ण मिशन स्कूल, नरोत्तमनगर (अरुणाचल प्र०)
१९०. रामकृष्ण मिशन हॉस्पिटल, इटानगर (अरु० प्र०)
१९१. रामकृष्ण मिशन स्कूल, अलाँग (अरु० प्र०)
१९२. श्री धनश्याम चन्द्राकर, औंधी (म० प्र०)
१९३. श्री भास्कर मढ़रिया, भिलाई (म० प्र०)
१९४. स्वामी चिरन्तनानन्द, रा.कृ.मि.नरोत्तमनगर (अ.प्र.)
१९५. श्री हरवंश लाल पहडा, जम्मूतवी (कश्मीर)
१९६. श्री योगेश कुमार जिन्दल, विवेक बिहार (दिल्ली)
१९७. डॉ० अखिलेश अग्रवाल—रुड़की, (उ० प्र०)
१९८. श्री अनिल कु० पूनम चन्द जैन—नागपुर (महा०)
१९९. डॉ० शीला जैन—बीकानेर (राजस्थान)
२००. श्री डी० एन० देशमुख—चन्द्रपूर (महाराष्ट्र)
२०१. श्री योगेश कुमार थलिया—नवलगढ़ (राजस्थान)
२०२. रामकृष्ण विवेकानन्द सेवाश्रम—अम्बिकापुर (म.प्र.)
२०३. श्री ओम भक्त बुदाथोपी—डाँग (नेपाल)
२०४. श्री ए० डी० भट्टाचार्य—भद्रकाली (प० बं०)

इस अंक में

		पृष्ठ
१. स्वामी विवेकानन्द ने कहा है		१
२. स्वामीजी के अनल-पंथ पर	(सम्पादकीय सम्बोधन)	२
३. आवाहन (कविता)	डा० केदारनाथ लाभ	३
४. धर्म एवं राष्ट्रीय एकता	स्वामी वीरेश्वरानन्द	९
५. स्वामी विवेकानन्द और महावीर हनुमान	स्वामी शशांकानन्द	१५
६. मानव का वास्तविक स्वरूप	स्वामी ब्रह्मेशानन्द	२०
७. गुरु गोविन्द सिंह : सच्चे मानवतावादी	प्रो० लालमोहर उपाध्याय	२६
८. मानव का परम पुरुषार्थ	स्वामी श्री शरणानन्दजी महाराज	२९
९. समाचार एवं सूचनाएँ		३०

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की हिन्दी मासिकी

वर्ष—१८ जनवरी—१९९९ अंक—१

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :
डा० केदारनाथ लाभ
सहायक सम्पादक :
ब्रजमोहन प्रसाद सिन्हा
शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-२२६३९

सहयोग राशि :

आजीवन सदस्य—	७०० रु०
वार्षिक—	५० रु०
रजिस्टर्ड डाक से	६५ रु०
एक प्रति—	५ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा है

□ यदि ईश्वर है; तो हमें उसे देखना चाहिए; यदि आत्मा है; तो हमें उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति कर लेनी चाहिए, अन्यथा उन पर विश्वास न करना ही अच्छा है। ढोंगी बनने की अपेक्षा स्पष्ट रूप से नास्तिक बनना अच्छा है।

□ उपनिषदों में यदि कोई एक ऐसा शब्द है, जो वज्रवेग से अज्ञान राशि के ऊपर पतित होता है, उसे बिलकुल उड़ा देता है, तो वह है 'अभी:'—निर्भयता। संसार को यदि किसी एक धर्म की शिक्षा देनी चाहिए, तो वह है 'निर्भीकता'।··· भय ही पतन तथा पाप का कारण है। भय से ही दुःख होता है, यही मृत्यु का कारण है तथा इसी के कारण सारी बुराई तथा पाप होता है।

□ एक बात पर विचार करके देखिए, मनुष्य नियमों को बनाता है या नियम मनुष्य को बनाते हैं? मनुष्य रुपया पैदा करता है या रुपया मनुष्यों को पैदा करता है? मनुष्य कीर्ति और नाम पैदा करता है या कीर्ति और नाम मनुष्य पैदा करते हैं? मेरे मित्रो, पहले मनुष्य बनिए, तब आप देखेंगे कि वे सब बाकी चीजें स्वयं आपका अनुसरण करेंगी।·····आपने मनुष्य योनि में जन्म लिया है तो अपनी कीर्ति यहीं छोड़ जाइए।

□ दुनिया तभी पवित्र और अच्छी हो सकती है, जब हम स्वयं पवित्र और अच्छे हों! वह है कार्य और हम हैं उसके कारण। इसलिए आओ, हम अपने आप को पवित्र बना लें। आओ, हम अपने आप को पूर्ण बना लें।

सम्पादकीय सम्बोधन

स्वामीजी के अनल-पंथ पर

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

आप सबको नव-वर्ष की बधाइयाँ ! यह नया वर्ष आप सब पर आध्यात्मिक उत्कर्ष एवं भौतिक समृद्धि का मंगलमय अमृतकलश उड़ेलता रहे—अपने त्रिदेवों से यही प्रार्थना है मेरी।

आप सबके सहयोग से 'विवेक शिखा' इस अंक के साथ प्रवेश कर रही है अपने जीवन के अट्ठारहवें वर्ष में। आह्लादित हूँ मैं। जिस पत्रिका की न कोई स्थायी निधि है, न कार्यालय में कोई कर्मचारी, फिर भी, जो विगत सत्रह वर्षों से अनवरत निर्वात-निष्कम्प दीप-शिखा की भाँति अपना आलोक विकीर्ण करती जा रही है, वह मुझे भी एक विस्मय से भर दे रही है। इसने अपने त्रिदेवों में मेरी आस्था को हिमालय की दृढ़ता और गंगा की निरन्तरता प्रदान की है। मुझे मिला है एक रहस्यमय आलोक। बलवती हुई है मेरी यह धारणा कि श्रीरामकृष्ण, श्री माँ सारदा देवी और स्वामी जी के जीवनदायी संदेशों का रथ-चक्र वर्त्तमान युग में अपने धर्म-ध्वज के साथ चलता ही रहेगा—अनवरत और अबाध गति से। यह रथ-चक्र अपने लोक-मंगलकारी घर्घरनाद से समग्र विश्व को आलोड़ित-स्पन्दित करता ही रहेगा। आइए, हमें कान हो तो इस नाद को सुनें, संवेदनशील मन हो तो इसका मनन करें और हृदय हो तो इसकी अवधारणा करें।

मित्रो, इसी आठ जनवरी को विश्ववंद्य स्वामी विवेकानन्दजी की १३७वीं जयन्ती है। आइए, हम उनके स्मरण-चिन्तन की मन्दाकिनी में अवगाहन कर कृतकृत्य हों।

स्वामीजी का व्यक्तित्व देवतात्मा नगाधिराज हिमालय की भांति इतना ऊँचा है, कि उसके उत्तुंग शिखरों का हमारे बौने हाथ स्पर्श नहीं कर सकते और सागर की भाँति इतना गहरा है कि उसके तल तक हम प्रवेश ही नहीं कर सकते। किन्तु हम उनका अवलोकन कर अपने जीवन और समाज को संवार अवश्य सकते हैं।

आज से प्रायः सौ वर्ष पूर्व स्वामीजी ने हमारी तमोगुणी तंद्रा पर कशाघात करते हुए हमें सोते से झकझोर कर जगाया था। हमने अंगड़ाइयाँ लीं। हम जगे। और हमारा देश स्वाधीन हो गया। हमने कई क्षेत्रों में विस्मयकारी प्रगति की। भौतिक विज्ञानों—आणविकी, प्रौद्योगिकी, कृषि आदि क्षेत्रों में हुई अपनी प्रगति पर हम गर्व कर सकते हैं। किन्तु, दूसरी ओर, विगत पचास वर्षों में, आन्तरिक क्षेत्र में, चारित्रिक क्षेत्र में हमारा पतन भी चिन्तनीय स्तर तक हुआ है। भ्रष्टाचार और घोटालों के आरोप में हमारे कई पूर्व मुख्य मंत्री कारागार में बन्द हो चुके हैं। कई प्रधान मंत्रियों पर भी भ्रष्टाचार के आरोप लगे हैं। बटमारी; लूट, हत्या आदि आपराधिक कृत्यों में भयंकर वृद्धि हुई है। हमारा आत्मबल गिरा है। हम बाहुबल से स्वार्थसिद्धि में लगे हुए हैं। कैसी भयावह स्थिति है

यह ! और इसका मुख्य कारण है यह कि हम अपने युग नायक स्वामी विवेकानन्द के उपदेशों-सन्देशों की ओर अपेक्षित ध्यान नहीं दे पा रहे हैं ।

हममें स्वार्थ परायणता इस सीमा तक बढ़ गयी है कि हम अपने हित के सिवा और कुछ देखना ही नहीं चाहते। दास हो गये हैं हम देह के और भूल बैठे हैं अपने आत्मस्वरूप को ! इससे हम पथ-भ्रान्त हुए हैं। स्वामीजी ने अमेरिका की धर्मसभा में उद्ग्रीव कंठ से जो सिंह गर्जना की थी वह हमारे लिए भी सार्थक है—'हे अमृत के अधिकारी गण ! आप तो ईश्वर की सन्तान हैं, अमर आनन्द के भागी हैं, पवित्र और पूर्ण आत्मा हैं। आप इस मर्त्यभूमि पर देवता हैं। ...आप हैं आत्मा अमर, आत्मा मुक्त, आनन्दमय और नित्य। आप जड़ नहीं हैं, आप शरीर नहीं हैं; जड़ तो आपका दास है, न कि आप हैं दास जड़ के।"[1]

जब तक हम अपने को देह समझते रहेंगे, हम भोगवादी बने रहेंगे; हम स्वार्थी बने रहेंगे और हम अकरणीय कर्म करते ही रहेंगे। देह-दृष्टि हमें दुर्बल बनाती है, हमें विवेकहीन कर्म करने को प्रेरित करती है और हम पतन की ओर गिरते हो चले जाते हैं। यह देह-दृष्टि, यह दुर्बलता ही हमारे समस्त दुःखों और पतन का कारण है। लन्दन में दिये गये अपने भाषण में स्वामीजी ने जो कहा था मानो वह अँग्रेजों के लिए ही नहीं, हमारे लिए भी स्पन्दनकारी है। उन्होंने कहा—'दुर्बलता ही संसार में समस्त दुःख का कारण है, इसी से सारे दुःख कष्ट पैदा होते हैं। हम दुर्बल हैं, इसीलिए इतना दुःख भोगते हैं। हम दुर्बलता के कारण ही चोरी-डकैती, झूठ-ठगी तथा इसी प्रकार के अनेकानेक दुष्कर्म करते हैं। दुर्बल होने के कारण ही हम मृत्यु के मुख में गिरते हैं। जहाँ हमें दुर्बल बनाने वाला कोई नहीं है, वहाँ न मृत्यु है, न दुःख। हमलोग केवल भ्रान्तिवश दुःख भोगते हैं। इस भ्रान्ति को दूर कर दो, सभी दुःख चले जायेंगे।'[2]

आप कह सकते हैं कि मैं शिव हूँ, मैं आत्मा हूँ, मैं आनन्द स्वरूप हूँ ? आदि बातें सुनने में तो अच्छी लगती हैं, तर्कयुक्त भी लग सकती हैं किन्तु मुँह से कहना एक बात है और उसे जीवन में उतारना भिन्न बात है। यह कठिन है, बहुत कठिन और मुश्किल। आपका कहना सही है। लेकिन अगर दूध हमें न मिल सके तो क्या हम अपनी भूख-प्यास मिटाने के लिए जहर पी लेंगे ? यदि हम एक परम सत्य का अभी साक्षात्कार नहीं कर पाते हैं तो क्या हम असत्य के घनान्धकार में, दुर्बलता और भोगों के कुसंस्कार में आकंठ डूब कर अपने प्राणान्त कर लें ? इससे तो हमारा मंगल नहीं होगा। देह-दृष्टि, भोग-दृष्टि हमें दुर्बल बनाती है और आत्म-दृष्टि, अद्वैत-दृष्टि हमें जीने का बल प्रदान करती है, हमें सबल जीवन-दृष्टि प्रदान करती है। इसी से स्वामीजी हमें कहते हैं—'बल ही एक आवश्यक बात है। बल ही भव-रोग की दवा है। धनिकों द्वारा रौंदे जाने वाले निर्धनों के लिए बल ही एक मात्र दवा है। विद्वानों द्वारा दबाये जाने वाले अशिक्षितों के लिए बल ही एकमात्र दवा है और अन्य पापियों द्वारा सताये जाने वाले पापियों के लिए भी वही एकमात्र दवा है।'[3]

---

१. वि० सा०—प्र० खंड-पृ० १२
२. वही—द्वि० खंड-पृ० १८६
३. वही—द्वि० खंड-पृ० १८९

स्वामी जी ने हम में आशा और बल का, आत्मविश्वास और आत्मशक्ति का संचार किया है। वे मानते हैं कि कोई व्यक्ति चाहे वह कितना भी बड़ा पापी-तापी क्यों न हो, वह सदैव वैसा ही नहीं रहता। जब उस पर दायित्व डाला जाता है तब उसकी आसुरी प्रवृति दब जाती है और उसका सिंह-भाव, उसका देवत्व जाग्रत हो जाता है। और अपने देवत्व के जागरण से मनुष्य समस्त हीन एवं अभद्र कर्मों से विरत हो जाता है तथा वह अपने दायित्वों का सही-सही निर्वाह करने लगता है। स्वामी जी कहते हैं—"यदि एक नन्हें बच्चे को तुम्हारे हाथों सौंप दूं तो तुम उसके प्रति कैसा व्यवहार करोगे ? उस क्षण के लिए तुम्हारा सारा जीवन बदल जायगा। इसी प्रकार, जब सारे उत्तरदायित्व का बोझ हम पर डाल दिया जाता है, तब हम अपने सर्वोच्च भाव में आरोहण करते हैं। ···जब शैतान या भगवान किसी को भी हम अपने दोषों के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराते, तभी हम सर्वोच्च भाव में पहुँचते हैं। अपने भाग्य के लिए मैं स्वयं उत्तरदायी हूं। ···पर मेरा स्वरूप शुद्ध और आनन्द मात्र है। इससे विपरीत जो भी विचार हैं, उनको त्याग देना चाहिए।' कितना दिव्य और भव्य भाव है यह ! हमें इसका मनन और निदिध्यासन करना चाहिए, करना ही चाहिए।

अब जब हमारा देवत्व भाव जग जाता है, हमारी अद्वैत-दृष्टि का उन्मेष हो जाता है, हमें यह लगने लगता है कि मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ, मैं केवल चिदानन्द रूप शिव ही हूँ तब हमारी चरित्र-ऊर्जा का विस्फोट होता है। इससे हमारे जीवन में एक नया प्रकाश अवतरित होता है। हमारा पूर्ण रूपान्तरण होता है। और यह हर व्यक्तिके लिए सच है। 'मछुआ यदि अपने को आत्मा समझकर चिंतन करे, तो वह एक उत्तम मछुआ होगा। विद्यार्थी यदि अपने को आत्मा विचारे, तो वह एक श्रेष्ठ विद्यार्थी होगा। वकील यदि अपने को आत्मा समझे तो वह एक अच्छा वकील होगा। औरों के विषय में भी यही समझो।' ऐसा स्वामी जी का कथन है मद्रास में दिये गये अपने प्रसिद्ध व्याख्यान में। इसका एक व्यापक सामाजिक परिणाम भी होगा। जाति-भेद तो रह जायगा पर जातिगत विशेषाधिकार स्वतः नष्ट हो जाएगा। एक जूता सीने वाले और एक वेद-पाठ करने वाले में, एक विद्वान और एक मूर्ख में, एक धनी और एक दरिद्र में, एक बलशाली और एक दुर्बल में भेद नहीं रह जाएगा क्योंकि तत्वतः दोनों एक ही हैं और समाज को जितनी आवश्यकता वेद की है, उतनी ही आवश्यकता जूते की भी है। एक कलक्टर है और एक चपरासी है। प्रशासन के संचालन के लिए दोनों की समान रूप से जरूरत है। न कोई बड़ा है, न कोई छोटा। दोनों मनुष्य हैं और दोनों को मानवीय मर्यादा एवं गरिमा मिलनी ही चाहिए। यह भाव है स्वामी जी का। कैसा विलक्षण और चमत्कारी तथा बलशाली भाव है ! हमारे लोकतांत्रिक समाज के लिए यह वेदान्त-दर्शन कितना उपयोगी है !

अब अपने दैवी व्यक्तित्व के साथ, चरित्र की पवित्रता और चित्त की शुद्धता के द्वारा हमें अपने देश और समाज का पुनर्गठन करना होगा। स्वामी जी की दृष्टि में हमारा सबसे बड़ा राष्ट्रीय पाप है जन समुदाय की उपेक्षा। यह हमारे पतन का कारण है। उनके शब्दों में– 'भारत में दो बड़ी बुरी बातें हैं। स्त्रियों का तिरस्कार और गरीबों को जाति भेद के द्वारा पीसना।' हमें स्त्रियों का आदर करना होगा और गरीबों को गरिमा प्रदान करनी होगी।

स्वामी जी ने घोषणा की कि "भारत के राष्ट्रीय आदर्श हैं—त्याग और सेवा। आप इन धाराओं में तीव्रता उत्पन्न कीजिए और शेष सब अपने आप ठीक हो जाएगा।"

ये सब स्वामीजी के वैचारिक बम हैं। प्राणघाती बमों का विस्फोट करने की जो संस्कृति हममें पनप रही है उसकी अपेक्षा स्वामी जी के इन जीवनदायी बैचारिक बमों का विस्फोट करने की आज अधिक आवश्यकता है। यह हमारे भीतर की क्षुद्रता, स्वार्थपरता और भेदपरक दृष्टि मिटेगी।

मित्रो, स्वामी जी के क्रान्तिकारी विचार अग्नि मंत्र हैं। उन्होंने हमारे लिए एक अनल पंथ का निर्माण किया है। हमें उस पर चलना होगा, चलना ही होगा, अपने राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिए।

एक अग्निवीण के तारों पर अपनी सशक्त उंगलियों से तीव्र चोट करते हुए मानो वे हमें झकझोरते हैं—'तुम धन्य हो, क्योंकि सेवा करने का तुमको अधिकार मिला और दूसरों को नहीं मिला। केवल ईश्वर पूजा के भाव से सेवा करो।...अनेक दुःखी और कंगाल प्राणी हमारी मुक्ति के माध्यम हैं, ताकि हम रोगी, पागल, कोढ़ी, पापी आदि स्वरूपों में विचरते हुए प्रभु की सेवा कर सकें। मेरे शब्द बड़े गम्भीर हैं और मैं उन्हें फिर दुहराता हूँ कि हमलोगों के जीवन का सर्वश्रेष्ठ सौभाग्य यही है कि हम इन भिन्न-भिन्न रूपों में विराजमान भगवान् की सेवा कर सकते हैं। ...गरीबों में ज्ञान का विस्तार करो, धनियों पर और भी अधिक प्रकाश डालो क्योंकि दरिद्रों की अपेक्षा धनियों को अधिक प्रकाश की आवश्यकता है। अनपढ़ लोगों को भी प्रकाश दिखाओ। शिक्षित मनुष्यों के लिए और अधिक प्रकाश चाहिए क्योंकि आजकल शिक्षा का मिथ्याभिमान खूब प्रबल हो रहा है।"[४]

तो मेरे मित्रो, अब जब कि इक्कीसवीं शताब्दी हमारे द्वार पर दस्तक दे रही है तो हमें स्वामीजी के अग्नि-मंत्र से अपने प्राणों को प्रदीप्त कर अपने जीवन के आध्यात्मिक एवं भौतिक उत्कर्ष के लिए तथा एक नये सर्वशक्तिमान ज्योतिर्मय भारत के नव-निर्वाण के लिए हमें हर प्रकार का त्याग करने, हर प्रकार की अपनी बलि देने को तत्पर हो जाना होगा। हमें स्मरण रखना होगा कि हमारे भारत का पुनर्निर्माण कोई बाहरी व्यक्ति आकर नहीं करेगा, बल्कि हमें, केवल हमें ही करना होगा। इसी में हमारा उद्धार है, इसी में हमारे राष्ट्र का मंगल है। अतः स्वामी जी ने अपने ब्रह्म-भाव को जगाने का, त्याग और सेवा का, मनुष्य-निर्माण का और विशेषाधिकार रहित समाज के गठन का जो अनल पंथ हमारे समक्ष प्रशस्त किया है उस पर हमें चलने के लिए कमर कस कर तत्पर हो जाना पड़ेगा। भारत माता अब और प्रतीक्षा नहीं कर सकती। स्वामी जी अब और प्रतीक्षा नहीं कर सकते। सचमुच 'स्वामीजी के अनल-पंथ पर, तुम न चलोगे, कौन चलेगा!' इत्यलम्। जय स्वामी जी!!

---

४. भारतीय व्याख्यान—पृ० १६७

आवाहन

डॉ० केदार नाथ लाभ

सिंहनाद सुन कर यतिवर का, किसका हृदय नहीं मचलेगा ?
स्वामीजी के अनल-पंथ पर, तुम न चलोगे, कौन चलेगा ?

सुनो त्याग सेवा की वाणी
'अभय-अभय' की ध्वनि कल्याणी

साँचे में स्वदेश के ढलने, तुम न गलोगे, कौन गलेगा ?
स्वामीजी के अनल-पंथ पर तुम न चलोगे, कौन चलेगा ?

मानव-मर्यादा का शतदल
मुकुलित हो उर-उर में पल पल

प्रेम धर्म की दीप-शिखा बन, तुम न जलोगे, कौन जलेगा ?
स्वामीजी के अनल-पंथ पर, तुम न चलोगे, कौन चलेगा ?

बन्द रहे न और गिरि-वन में
खिले 'तत्वमसि' अब जीवन में

नव वेदान्त-विपिन में फल बन, तुम न फलोगे, कौन फलेगा ?
स्वामीजी के अनल-पंथ पर, तुम न चलोगे, कौन चलेगा ?

तोड़ो तोड़ो तम की कारा
बहा अभेद-ज्योति की धारा

ब्रह्म-दृष्टि ले नव-जीवन में, तुम न ढलोगे, कौन ढलेगा ?
स्वामीजी के अनल-पंथ पर, तुम न चलोगे, कौन चलेगा ?

धर्म एवं राष्ट्रीय एकता

—ब्रह्मलीन स्वामी वीरेश्वरानन्द

[रामकृष्ण संघ के दसवें अध्यक्ष स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज, द्वारा श्रीरामकृष्ण आश्रम बंगलोर में अप्रैल १९७८ में अंग्रेजी में दिये गये व्याख्यान का हिन्दी भावानुवाद।]

यदि आप स्वामी विवेकानन्द के व्याख्यानों का अध्ययन करें, जिसे उन्होंने १८९७ में अमेरिका से वापस आने पर भारत एवं श्रीलंका में दिया था, (जो भारत में विवेकानन्द या 'लेक्चर्स फ्रॉम कोलम्बो टू अल्मोरा' शीर्षक से प्रकाशित हैं) आप पायेंगे कि उनमें उन्होंने एक विन्दु को प्राय: बहुत स्पष्ट किया है और वह है, इस देश का आदर्श। उन्होंने प्राय: कहा है कि इस देश का आदर्श है—धर्म और मोक्ष। यही राष्ट्र की शक्ति है। प्रत्येक राष्ट्र एक राष्ट्रीय आदर्श रखता है, और भारत ने बहुत पूर्व, लगभग तीन या चार हजार वर्ष पूर्व, मोक्ष के इस धार्मिक आदर्श का चयन किया। इसलिए, वे कहते हैं कि यदि हम इस धार्मिक आदर्श को छोड़ दें; तो इस राष्ट्र का अस्तित्व ही नहीं रह जायेगा। इस आदर्श का परित्याग करना और किसी दूसरे नये आदर्श को अपनाना, जो सम्प्रति पाश्चात्य देशों में प्रचलित हैं, सम्भव ही नहीं है। यह सम्भव ही नहीं है कि गंगा की धारा को मोड़ दिया जाय, जो हिमालय से निकलती है, और नये नाला में बहा दिया जाय। इसी प्रकार हम सही हों या गलत, हमने इस आदर्श का चयन बहुत पहले किया, और अब यह सम्भव ही नहीं है कि हम इस आदर्श का परित्याग कर दें और बिना किसी सांस्कृतिक हत्या के दूसरे आदर्श को अपना लें। और सब कुछ होते हुए उन्होंने कहा कि यह आदर्श कोई गलत नहीं है। यह एक महान आदर्श है जिसने हमें तीस या चालीस सौ वर्षों से अस्तित्व में रखने हेतु सहायता की है, जबकि दूसरे राष्ट्रों ने क्षणभंगुर और शक्तिशाली जीवन व्यतीत किये, परन्तु संसार से विलुप्त हो गये। भारत आज भी अपने आदर्श के लिए जीवित है—अपने धार्मिक आदर्श के लिए। और इसीलिए उन्होंने जोड़ देते हुए कहा है कि भारत को अस्तित्व में रहना है और एक महान राष्ट्र बनना है तो एक महान धार्मिक आन्दोलन आवश्यक है।

जब स्वामी विवेकानन्द धर्म महासभा में हिन्दू धर्म का प्रतिनिधित्व करने अमेरिका गए, उनका सम्मान किया गया और उन्हें बड़ी तल्लीनता के साथ सुना गया। तदुपरान्त भी उन्हें हर जगह सम्मान दिया गया, उनके सन्देशों को बड़े ही उत्सुकतापूर्ण ढंग से अपनाया गया और बहुत-सी चीजें उनके सम्बन्ध में पत्रों में प्रकाशित की गयीं, जिनका प्रकाशन भारत में भी हुआ। पाश्चात्य देश में स्वामी जी के प्रकट होने के सम्बन्ध में महान सन्त अरविन्द ने कहा—"जैसा कि गुरु ने देखा, शौर्यपूर्ण आत्मा के रूप में नियति के अनुदैर्ध्य दोनों हाथों के बीच विश्व को थामने तथा परिवर्तित करने के लिए विवेकानन्द का अग्रसर होना, विश्व के लिए प्रथम दृश्यमान लक्षण प्रतीत हुआ कि न मात्र अस्तित्व में बने रहने के लिए अपितु प्रेम, सद्भावना एवं शान्ति के अपने

संदेशों से विश्व पर विजय स्थापित करने के लिए भारत जागृत हो गया।"

यह विजय अणुशक्ति (ऐटमबम) या सैन्य शक्ति से नहीं प्राप्त हुई, अपितु सब देश के प्रति प्रेम और त्याग, शान्ति और भलाई के महान धार्मिक आदर्श की शिक्षा देने से हुई। स्वामीजी ने कहा कि भारत यह उपहार संसार को जब कभी आवश्यकता हुई, भूत में बहुत दिन पूर्व दे चुका था। कभी कभी संसार को उनकी आवश्यकता हुई, भारत ने इस आदर्श को, धर्म के इस सत् को, दूसरे देशों के लिए लिया था। और यह केवल विजय के लिए नहीं किया गया अपितु प्रेम के वशिभूत हो ठीक ओसकण की तरह किया गया जो अदृश्य हो कली पर गिरते हैं और सुन्दर फूल खिलाते हैं। दूसरे महान देशों ने अपने आदर्शों का विस्तार सैन्य शक्ति से किया, रक्त बहाकर किया। परन्तु भारत ने किसी राष्ट्र पर विजय प्राप्त नहीं की और न इसने सैन्य शक्ति का व्यवहार ही किया। इसकी भलाई, प्रेम और शान्ति के द्वारा सांस्कृतिक विजय थी। महान धार्मिक आदर्श, जिसकी शिक्षा भारत ने दी, ने अधर्म से इन शताब्दियों में संसार की रक्षा की है और आज भी भारत वही कर रहा है। पाश्चात्य भौतिकवादी संस्कृति थोड़ी बहुत लड़खड़ा रही है, बावजूद इसके कि इसे बड़ी टेकनी दी गयी है, यह खड़ा होने योग्य नहीं है। आवश्यकता है एक नवीन धार्मिक सन्देश की जो इसमें ताजा जीवनी शक्ति प्रदान करेगा। और इसके लिए पुन: भारत जाना होगा।

धर्म महासभा में स्वामी विवेकानन्द की विजय का समाचार जब भारत में आया तो यह देश, जो लगभग एक हजार वर्ष पूर्व से गहरी निद्रा में सोया था, जग उठा और इसने यह पाया कि हम हमेशा भिखारी ही नहीं रहे हैं, हम केवल दूसरे से माँगते ही नहीं रहे हैं, अपितु हमने संसार को उसकी अस्तित्व रक्षा के लिए बहुत कुछ दिया है। पाश्चात्य देशों के महात्माओं ने यह विचार अभिव्यक्त किया है कि यदि संसार को अस्तित्व में रहना है, यदि संसार को जीवित रहना है, तो भारतीय आदर्श या भारतीय जीवन पद्धति की भाँति इस संसार को कुछ अंगीकार करना होगा। हम प्राय: पाते हैं कि प्रत्येक आधुनिक लेखों में भारतीय आदर्श और खासकर रामकृष्ण के बारे में बहुत सी चीजें हैं। यह दिखलाता है कि भारत का प्रथम जागरण धर्म के क्षेत्र में हुआ। नि:सन्देह इसके पूर्व बंगाल, पंजाब, बम्बई और दूसरे स्थानों में धार्मिक आन्दोलन हुए थे, परन्तु, वे सब स्थानीय थे, राष्ट्रीय स्तर पर नहीं थे। पश्चिम में स्वामी विवेकानन्द की सफलता ने सम्पूर्ण राष्ट्र को जगा दिया। यद्यपि यह सफलता धर्म के क्षेत्र में थी, उस समय के हमारे अँग्रेज शासक हमारी ओर सन्देह की दृष्टि से देख रहे थे, क्योंकि उन्हें ऐसा लग रहा था कि यह जागरण एक विशेष क्षेत्र में है, ऐसा दूसरे क्षेत्र में भी हो सकता है। वे भयीभत हो गये कि धार्मिक क्षेत्र का यह जागरण कहीं राजनीतिक क्षेत्र में भी न हो जाय तथा लोग राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने का प्रयास न करने लगें, जिसे उन्होंने वास्तव में किया भी। यद्यपि सरकारें और विदेशी पत्रों ने स्वामी जी की आलोचनाएँ कीं और हिन्दुत्व को निम्न दर्शाने के प्रयास किये, पर वे कुछ नहीं कर सके। उनमें कुछ भारतीय भी थे, जिन्होंने स्वामीजी को निम्न जताने के प्रयास किये, परन्तु यह जागरण रुका नहीं। सम्पूर्ण भारत में धार्मिक सभाएँ हुईं, धार्मिक संगठन बने और सम्पूर्ण राष्ट्र धार्मिक उत्साह में था। और उस धार्मिक उत्साह में, राजनीतिक आन्दोलन, स्वतन्त्रता के लिए राष्ट्रीय संघर्ष आरम्भ हो गया। काँग्रेस का जन्म हुआ और हमने अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त की।

परन्तु अब दूसरा भी क्षेत्र है जहाँ हमें अभी भी स्वतन्त्रता प्राप्त करनी है और वह है—आर्थिक क्षेत्र। लोगों को वृहद् जनसमुदाय अभी भी आर्थिक गुलामी के अधीन है और उन्हें आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करनी है। आप देखते हैं कि आर्थिक स्वतन्त्रता का यह संघर्ष सम्पूर्ण भारत वर्ष में चल रहा है। प्राचीन भारत में लोगों ने हर चीज संगठित की थी—राजनीतिक जीवन, सामाजिक जीवन, शैक्षिक जीवन सब चीजें धार्मिक आधार पर संगठित थीं। हमारी अपनी राजनीति थी, हमारी अपनी आर्थिक नीति थी और हमारे सामाजिक नियम थे। परन्तु, वे सब इस महान आदर्श के विषय थे, धार्मिक आदर्श या मोक्ष के। हमारा समाज इसी रीति से संगठित था। यदि हम मनु, याज्ञवलक्य और दूसरे की स्मृतियों का अध्ययन करें तो हम उनमें कहींभी और कभी भी 'अधिकार' शब्द नहीं पायेंगे। इन ग्रथों में हर जगह केवल कर्त्तव्य का उल्लेख है, अधिकार का नहीं। परन्तु, हमारा आधुनिक संविधान मूल-अधिकार की चर्चा करता है। हमें 'मौलिक अधिकारों' ने पूर्णतया स्वार्थी बना दिया है। हम हमेशा अपने अधिकारों का दावा कर रहे हैं, परन्तु हम दूसरों के अधिकार को नहीं देख रहे हैं, जो हमारा कर्त्तव्य है। आप देखेंगे कि मौलिक अधिकार का यह विचार न्यूनाधिक्य पाश्चात्य विचार है। भारत में यह हमेशा कर्त्तव्य रहा है, सेवा रहा है। हम जीवन की चार पारम्परिक अवस्थाओं को लें, जिन्हें चार आश्रम—ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम और संन्यास आश्रम कहते हैं। प्रथम तीन इस ढंग से सजाये गये थे कि मनुष्य धीरे-धीरे इनसे होकर संन्यास में पहुँच जाय और जीवन के महान उद्देश्य मोक्ष प्राप्त कर सके अर्थात् अज्ञानता और सहनशीलता की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो सके। सम्पूर्ण जीवन धार्मिक आदर्श के अनुसार नियमित था।

संसार के कोलाहल से दूर अपने गुरुओं के साथ रहने और सेवा करने के लिए विद्यार्थियों को जंगल जाना पड़ता था। उन्हें पूर्णतया नैतिक जीवन व्यतीत करना पड़ता था, आध्यात्मिक साधना का अध्ययन करना पड़ता था श्रद्धापूर्वक गुरु की सेवा करनी पड़ती थी। उन्हें श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न करने होते ताकि जो कुछ भी गुरु पढ़ावें वे उचित ढंग से ग्रहण कर सकें। इस तरह विद्यार्थी जीवन बड़ा संयमित था, आज की तरह नहीं कि हर जगह समूह में ही जाते हैं, नारे लगाते और चीजें विध्वंस करते हैं। आखिर जो वे तोड़ते हैं वे हमारी राष्ट्रीय सम्पत्ति हैं। किसकी क्षति होती है? हमारे राष्ट्र की क्षति होती है। यह वे नहीं समझते हैं। वे समझते हैं कि जिन चीजों को वे तोड़ रहे हैं, वे सरकारी सम्पत्ति हैं। सरकारी सम्पत्ति राष्ट्रीय सम्पत्ति है, और जब यह विनष्ट की जाती है, राष्ट्रीय सम्पत्ति विनष्ट होती है। ये सब प्राचीनकाल में सम्भव नहीं थे, क्योंकि विद्यार्थी जीवन कुछ विशेष कर्त्तव्यों द्वारा नियमित था, अधिकारों द्वारा नहीं। आज हम केवल अधिकार की बातें करते हैं। यही कारण है कि हम छात्र संख्या में अधिकांश अनुशासनहीनता पाते हैं। कर्त्तव्य के बदले अधिकार पर गलत जोड़ डालने के कारण और धर्म के राष्ट्रीय आदर्श छोड़ने के कारण, इस बहाने कि हमारा धर्मनिर्पेक्ष राज्य है, शैक्षिक जगत में हर जगह बहुत हलचल है—विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विद्यालयों में। प्राचीनकाल में विद्यार्थी जीवन बड़ा ही अनुशासित था।

इस प्रकार लगभग पन्द्रह वर्ष व्यतीत करने के बाद विद्यार्थी आठ वर्ष के लिए अपने गुरु के पास

जाता था और जब वह तेइस वर्ष का होता तो घर लौटता, और इस प्रकार वह संसार में प्रवेश करता, विवाहित होता और गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। गृहस्थ आश्रम क्या था ? यह केवल आनन्द प्राप्त करने की अवस्था नहीं थी। गृहस्थ के लिए कुछ निश्चित कर्त्तव्य भी निर्धारित थे। उसे समाज में कैसे व्यवहार करना चाहिए, अतिथियों को स्वागत कैसे करना चाहिए, समाज की भलाई के लिए पैसे कैसे खर्च करने चाहिए इत्यादि। सम्पूर्ण गृहस्थ जीवन में समाज की सेवा को प्रथम महत्व दिया जाता था; तब परिवार और अन्त में व्यक्तिगत आनन्द की बात आती। परन्तु आज सेवा का कोई आदर्श नहीं है, केवल आनन्द का विचार ही रहता है। मैं यहाँ यह कहने में दुःखी हो रहा हूँ कि माता-पिता जो चाहते हैं, वे करते हैं, वे सिनेमा एवं क्लब जाते हैं तथा वे चाहते हैं कि उनके बच्चे निश्छल साधु बनें जो बिल्कुल ही असम्भव है। आपको बच्चों के लिए सर्व प्रथम वातावरण का निर्माण करना चाहिए और तब वे आपकी इच्छानुसार अपने व्यक्तित्व को ढाल सकेंगे। परन्तु यदि घर या विद्यालय में ऐसा वातावरण नहीं है, तो आप बच्चों को दोष नहीं दे सकते, यदि वे उचित व्यवहार नहीं करते या जीवन का उचित आदर्श नहीं रखते। आपको एक आदर्श जीवन जीना है, जैसा वे प्राचीन अरण्य विश्वविद्यालय में जीते थे और प्राचीनकाल में घर में भी। गृहस्थ आश्रम को त्याग का आश्रम समझा जाता था, क्योंकि अन्य आश्रम—ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ एवं संन्यास, गृहस्थ आश्रम पर ही निर्भर थे। सामाजिक जीवन का मुख्य ठहराव गृहस्थ आश्रम था और उसे बहुत-से कर्त्तव्यों का निर्वाह करना था। और तब वानप्रस्थ आश्रम आता था जो प्रायः गृहस्थ एवं संन्यास आश्रम की मध्यस्तता करता था। अन्त में सन्यास आता था—पूर्णतया मोक्ष के लिए संघर्ष के साथ। इस प्रकार प्राचीनकाल में महान धार्मिक आदर्श के साथ समाज का गठन हुआ था।

इसी प्रकार जीवन के चार मूल्य थे—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्म क्या है ? धर्म सच्चाई है, जो उन्मुक्त मस्तिष्क से धर्म ग्रन्थों द्वारा स्वीकृत अपने आप कर्त्तव्यों का निर्वहन करता है, इच्छा के विरुद्ध नहीं और न उन कार्यों को करते हुए जो धर्म ग्रन्थों द्वारा वर्जित हैं। वही धर्म है, वही सच्चाई है। धर्म के इस महान आदर्श का अनुकरण करने के लिए सबसे ऐसी आशा की जाती थी। प्राचीन भारत में बहुत-से ऐसे महान व्यक्ति थे जो कठोरता पूर्वक धर्म के इस आदर्श का अनुपालन करते थे, जैसे—श्रीराम, श्रीकृष्ण, पाण्डव इत्यादि। शुकदेव एवं अन्य व्यक्तियों जैसे लोग भी धर्म के इस आदर्श का अनुपालन करते थे। सच्चाई सामाजिक सूत्र का आधार थी। धर्म के बाद अर्थ आया। पैसा अनिवार्य था। कोई भी इसे अस्वीकार नहीं कर सकता कि पैसा आवश्यक है। परन्तु पैसा सच्चे साधनों से कमाया जाता और पैसा कमाना ही जीवन का उद्देश्य नहीं होता। धार्मिक आदर्श के अनुसार यह प्रतिबन्धित था। और तब काम का स्थान था जो मनुष्य की इच्छा की प्रतिपूर्त्ति है। परन्तु ये इच्छाएं भी धार्मिक उपदेशों द्वारा आवृत्त थीं। कोई भी भावात्मक आनन्द की ओर प्रवृत नहीं होता, जैसा कि प्रत्येक व्यक्ति चाहता है। प्रत्येक आत्मा सांसारिक जीवन का एक निश्चित अनुभव रखता, आनन्द का एक निश्चित हिस्सा रखता, परन्तु धर्म के महान आदर्श द्वारा इस पर निश्चित प्रतिबन्ध रहते थे। अन्त में मोक्ष का आदर्श आता था, जिसे कभी भुलाया नहीं जा सकता था। प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन के लिए याद रखना पड़ता था। इस प्रकार जीवन के चार मूल्य थे।

फिर, चार महान जातियाँ होती थीं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र। ब्राह्मण प्रतिभावान व्यक्ति थे जिन्होंने संस्कृति का प्रचार किया, क्षत्रियों ने संस्कृति की रक्षा की, वैश्यों ने देश को वैभव सम्पन्न बनाया और शुद्र श्रमिक थे जिन्होंने धनोपार्जन किया। सब राष्ट्र के लिए समान रूप से आवश्यक थे, समाज की भलाई के लिए थे। बाद में कुछ जातियों के साथ कुछ सुविधाएँ जुड़ गयीं, परन्तु यह मूल आदर्श नहीं था। मूल आदर्श यह था कि जिसकी जितनी क्षमता थी वह उतना ही राष्ट्र के लिए अवदान दे। प्रत्येक को अपनी सामर्थ्य के अनुसार समाज की सेवा करनी थी, और प्रत्येक ने आवश्यतानुसार प्राप्त किया। यह समाजवादी सिद्धांत प्रतीत होता है। प्रत्येक व्यक्ति को समाज की सेवा करनी पड़ती थी। उनका जीवन सुविधाभोगी नहीं था। ब्राह्मणों के समक्ष कुछ व्यवहार के आदर्श निर्धारित थे जिन्हें उन्हें करना था। यदि वे उसे पूरा करने में अपने को असमर्थ पाते, तो वे ब्राह्मण का सम्मान नहीं पाते। क्षत्रियों के लिए भी कुछ निश्चित जंगी आदर्श थे, जिससे वे हमेशा लगाव रखते थे। वैश्य विदेशों में जाकर पैसा कमाते थे, व्यवसाय करते थे। परन्तु सच्चाई ही आधार थी। इसी प्रकार, सब व्यापारिक वस्तुएँ, जो श्रमिकों द्वारा उत्पादित थीं, विदेशी व्यापार द्वारा देश को सम्पन्न करने में सहायक हुईं। और वे सब एक समान सामाजिक सूत्र के एक भाग थे, उपेक्षित नहीं, जैसा कि वे बाद में हो गये। ऐसे ही लोगों की उपेक्षा राष्ट्र के पतन का कारण हुई। ऊँची जातियाँ इस वृहद समुदाय से अपने अलग हो गयीं, और उन्हें सांस्कृतिक और आध्यात्मिक ज्ञान से नकारने लगीं, और इसका प्रतिफल हुआ, जैसा कि स्वामी जी कहते थे; हजार वर्षों की गुलामी, क्योंकि जन समुदाय यह जानने के लिए इच्छुक नहीं था कि राष्ट्र के साथ कौन घटना घट रही है। परन्तु आज, जैसा कि स्वामी जी चाहते थे, उन्हें आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र और बेहतर बनाने का प्रयास चल रहा है। आज हमारा यही कर्त्तव्य है।

निःसन्देह आज के समाज सेवा के अभिकर्त्ता अपने दृष्टिकोण में परोपकार परक हैं। कोई भी इसे अस्वीकार नहीं कर सकता। परन्तु दुर्भाग्य से वे सब पाश्चात्य भौतिकवाद की उपज हैं। और वे शारीरिक और आर्थिक योजना पर ही काम कर सकेंगे, परन्तु अन्य दो दूसरी योजनाओं—सांस्कृतिक और आध्यात्मिक की कमी है। इसी लिए स्वामी जी ने कहा था, "मैं एक समाजवादी हूँ और इसलिए नहीं कि समाजवाद हमारी सब बुराइयों की एक दवा है, क्योंकि रोटी न मिलने से अच्छा है एक टुकड़ा।" आर्थिक बेहतरी ही एक मात्र निदान है। जन-समूह अपने द्वारा उत्पादित राष्ट्रीय धन का समुचित हिस्सा पाने के लिए ही अधिकृत नहीं है, अपितु वे निश्चित रूप से राष्ट्र की आध्यात्मिकता और संस्कृति की सुविधा के भी हकदार हैं, जिसे हमारे महान पूर्वजों ने विकसित किया है। यही कारण है कि स्वामी जी, अपने एक आलेख में उच्च जातियों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—"तुम दस वर्ष पुराने मम्मी' हो !·· इस माया के संसार में तुम वास्तविक भ्रांति हो, रहस्य हो, रेगिस्तान में एक वास्तविक चमत्कार हो, तुम, भारत के उच्च वर्ग के लोगों! ऐ, तुम्हारी हड्डीदार उँगलियों पर कुछ रत्नों की अंगुठियाँ हैं जिन्हें तुम्हारे पुरखों ने संग्रहीत कर रखा, एवं तुम्हारे सड़णशील शवों के आलिंगन में कई प्राचीन खजानों की तिजोरियाँ सुरक्षित हैं। अभी तक तुम्हें इन्हें हस्तांतरित करने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ। अब वृतानी सल्तनत में, स्वतन्त्र शिक्षा तथा ज्ञान के इन दिनों में तुम अपने उत्तराधिकारियों को उन्हें हस्तांतरित क—

ओर जितनी शीघ्रता से हो सके, तुम यह कार्य कर दो। तुम अपने को शून्य से मिला दो और गायब हो जाओ और तुम अपनी जगह नये भारत को उठने दो। एक नवीन भारत निकल पड़े – निकले हल पकड़कर, किसानों की कुटी भेदकर, मछुआ, मोची, मेहतरों की झोपड़ियों से। निकल पड़े बनिये की दूकानों से, भुजवा के भाड़ के पास से, कारखाने से, हाट से, बाजार से। निकले झाड़ियों, जंगलों, पहाड़ियों, पर्वतों से।"

यह और कुछ नहीं केवल एक महान समाजवादी उथल-पुथल के लिए पुकार है। दूसरे सन्दर्भ में स्वामी जी ने कहा था—"मैं उस ईश्वर में विश्वास नहीं करता जो मुझे यहाँ रोटी न दे सके, जो स्वर्ग में वास्तविक आशीष न दे सके।" निःसन्देह आर्थिक स्वतन्त्रता आवश्यक है, परन्तु यह अकेले उपयुक्त नहीं है। यही स्वामी जी शिक्षा देना चाहते थे। यदि सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सच्चाई को राष्ट्र का हिस्सा बनाया जाय, विशेष कर निर्धन समुदाय को, तब, उन्होंने कहा, एक महान क्रान्ति आ सकेगी, और भारत पुनः उठ सकेगा और पूर्व में जिस स्थिति में रह चुका है, उससे महान ऊँचाई को प्राप्त कर सकेगा।

दूसरा महान आदर्श, जिस पर स्वामी जी ने विशेष बल दिया था, वह था—समन्वय की भावना, जो प्राचीन भारत की संस्कृति थी। प्राचीन भारत में एक महान सन्त ने कहा था—"एकम् सद् विप्रा वहुधा वदन्ति" (सत्य एक है: सन्त इसे विभिन्न नामों से अभिहित करते हैं।) तब से यह आदर्श मानो भारतीय संस्कृति और सभ्यता की मुख्य धारा बन गया है। यह आदर्श धारा प्राचीनकाल से आज तक नीचे उतरी है। महान आचार्यों और अवतारों ने इस पर बल दिया है। इस महान सच्चाई, इस समन्वय के आदर्श पर श्रीकृष्ण ने भगवत गीता में एक बार विशेष बल दिया था। ७वीं शताब्दी के लगभग इस समाहार-पूर्ण आदर्श पर शंकर ने बल दिया था, वे पंच-देवता पूजा के संस्थापक थे या प्रचारक थे—पाँच देवताओं की पूजा। किसी भी देवता की पूजा के पूर्व हमें पंच देवताओं की पूजा करनी पड़ती है। पंच देवता पाँच धार्मिक सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व करते हैं जो कभी सम्पूर्ण भारत में विद्यमान थे। एक छठा भी था, कार्तिकेय, जो अखिल भारतीय सम्प्रदाय नहीं था। इसलिए शंकर प्रायः षन्मत-स्थापकाचार्य, छठे सम्प्रदाय के संस्थापक, कहे जाते थे। वास्तव में, केवल पंच देवता पूजा अब सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रवाह में है। और शंकर ने ही इसे लोकप्रिय बनाया। इस आधुनिक युग में श्रीरामकृष्ण ने पुनः धार्मिक सद्भाव और समाहार पर बल दिया है, न केवल इसे शिक्षा के रूप में, अपितु वास्तविक अनुशासनिक व्यवहार में जो हिन्दुत्व के विभिन्न सम्प्रदाय में, और संसार के विभिन्न धर्मों में सिखाया गया है। उन्होंने विभिन्न प्रकार की साधना का अभ्यास किया, और प्रायः इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सब आध्यात्मिक मार्ग एक ही मंजिल पर पहुँचाते हैं। यह वास्तविकता उनकी प्रत्यक्ष अनुभूति पर आधारित थी, और इसलिए यह बिल्कुल आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण, जो प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित प्रमाण चाहता है, के अनुसार है। यह आज हमारे देश के लिए आवश्यक महान आदर्श है।

भारत—जैसा कि हमारा संविधान कहता है—एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है। 'धर्म निरपेक्ष' का क्या अर्थ होता है? आप देखें, किसी चीज को देखने का यह नकारात्मक ढंग है। हमें यह कहना चाहिए था कि हम सब धर्मों को स्वीकार करते हैं, जैसा कि सम्राट अशोक ने किया। यद्यपि वे एक बुद्धिस्ट थे, उन्होंने जैन एवं हिन्दुत्व को स्वीकार किया।

यद्यपि वे एक बुद्धिष्ट थे, उन्होंने विभिन्न सम्प्रदाय के मठ एवं मन्दिर बनवाये। कोई एक सीधा धर्म नहीं था। अशोक ने सब धर्मों को स्वीकार किया। परन्तु आज हम कहते हैं कि हमारा देश धर्म-निरपेक्ष राज्य है, और इसका अर्थ होता है कि हमारा कोई धर्म नहीं है। हम अपने बालक-बालिकाओं को विद्यालयों में धर्म नहीं पढ़ा सकते, क्योंकि यह संविधान के अनुकूल नहीं हो सकेगा, जैसा कि धर्म निरपेक्षता का हमारा सिद्धांत है। सम्भवत: आजकल वे यह पा रहे हैं कि यह एक विचित्र स्थिति है। वे सम्भवत: आज विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में धार्मिक शिक्षा की स्वीकृति दे रहे हैं। परन्तु 'धर्म निरपेक्ष राज्य' नकारात्मक मनोवृत्ति का प्रतीक है। हमें इसे इस तरह रखना चाहिए: हम सचमुच सब धर्म स्वीकार करते हैं और इसलिए हम मानव को उसके धर्म के लिए मानव-मानव में विभेद नहीं करेंगे। वह एक बहुत ही ठीक कथन हो सकेगा, जैसा कि मूल अधिकार कहने के बदले, हमें मूल कर्त्तव्य स्वीकारना चाहिए। प्राचीन भारत में कर्त्तव्य केवल चार आश्रमों के लिए निर्धारित नहीं था, अपितु चार वर्णों के लिए भी था। यह सब कर्त्तव्य का जीवन था, जैसा कि स्वामी जी ने कहा, "भारत का आदर्श त्याग और सेवा है।" हम जो कुछ भी करते उसमें त्याग की शिक्षा दी जाती थी। हम जो कुछ भी करते हमें समाज की सेवा भी सिखायी जाती थी। ये महान समाजवादी आदर्श हैं, यद्यपि ये आधुनिक रूप में नहीं रखे गये हैं। सम्पूर्ण भारतीय समाज के जीवन का बाह्य स्वरूप समाज-वादी था, परन्तु कालक्रम से बहुत परिवर्त्तन हुए, और प्राचीन पद्धति अब भयानक दीख पड़ती है। परन्तु यह बड़ी ही बुद्धिमत व्यवस्था थी, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति पहले दूसरे के बारे में सोचता और तब अपने बारे में। आज प्रत्येक व्यक्ति पहले अपने बारे में सोचता है और तब दूसरे के बारे में। यही हमारे आधुनिक संविधान एवं हमारी प्राचीन स्मृति में अन्तर है।

आज हमारा देश इन सब महान आदर्शों को चाहता है—प्राचीन भारत के समाजवादी आदर्श, मोक्ष के महान आध्यात्मिक आदर्श, त्याग और सेवा की भावना और समाहार की भावना भी कि सब धर्म सत्य हैं और वे ईश्वर प्राप्ति के अलग-अलग मार्ग हैं। ये सब हमारे देश की एकता के लिए आवश्यक हैं। हमारे देश में विभिन्न जाति एवं धर्म के लोग हैं। हमारे यहाँ बहुत-से धार्मिक सम्प्रदाय हैं। यदि ये सब एक राष्ट्र में एकत्व हो जायें तो यह सिद्धान्त प्रतिपादित हो जाएगा कि सब धार्मिक मार्ग सत्य हैं। यही सन्देश श्रीरामकृष्ण ने दिया और स्वामी जी ने उसे सिखाया। इस आदर्श के बिना इस देश को एक महान राष्ट्र के रूप में एकत्व करना बड़ा ही कठिन है। हम राष्ट्रीय एकता की बात करते हैं। किसी चीज के बिना राष्ट्रीय एकता नहीं आ सकती। सर्वप्रथम कोई सामान्य आदर्श होना चाहिए जो अन्य आदर्शों को समाहित कर सके। तब उस आदर्श के लिए एक सामूहिक संघर्ष होना चाहिए और तब उस आदर्श में से सफलता निकल आएगी। केवल वही हमें एक राष्ट्र का एकत्व प्रदान कर सकेगा। वह सामान्य आदर्श क्या है? स्वामी जी ने उसे निर्देशित किया है कि यह धर्म पर आधारित समाहार का दृष्टिकोण है। केवल यही हमें महान राष्ट्रीय एकत्व प्रदान कर सकता है। स्वामी जी हर ओर से हीरा थे, आप जिधर से भी देखें, चमक मालूम होगी। आजकल कुछ लोग सोचते हैं कि स्वामी जी एक महान राष्ट्रभक्त थे, कुछ लोग सोचते हैं कि वे एक महान कवि थे, या एक महान समाज सुधारक या शिक्षाविद थे। परन्तु वास्त-विकता यह है कि स्वामी जी यह सब थे और

इसके अतिरिक्त भी कुछ थे। वे एक ऋषि थे, अनुभूति परक मानव थे और उन्होंने आत्मा की अनुभूति की थी। उन्होंने अनुभूति की उस ऊँचाई से हमारे राष्ट्रीय जीवन के हर पहलू को देखा था। वे उस आत्मा के प्रकाश से, शक्ति से, हमारे राष्ट्रीय जीवन के हर पहलू का पुनर्निर्माण करना और उसे समर्थ बनाना चाहते थे। वे आत्मा के उस प्रकाश को हमारे राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न पहलू पर डालना चाहते थे: ताकि देश उस महान आदर्श के अनुसार पुनः कायाकल्प कर सके। यही वे करना चाहते थे।

यदि हम स्वामीजी को समझना चाहें तो हम उन्हें मात्र उनकी पुस्तकों का अध्ययन कर नहीं समझ सकते, हमें उन पर ध्यान करना होगा और ध्यान की गहराई में पहुँचकर उनके साथ एकाकार हो हम उनकी महानता और सन्देश को समझ सकेंगे। एक बार स्वामी जी ने कहा था कि यदि कोई दूसरा विवेकानन्द होता तो समझता कि इस विवेकानन्द ने क्या किया। स्वामी जी के प्रति हमारी अवधारणा पूर्ण नहीं हो सकेगी। स्वामी जी श्री रामकृष्ण के इस सन्देश को देने के लिए इस संसार में आये थे, सम्पूर्ण संसार में इस मिशन का प्रचार करने आये थे, इसलिए कि यह देश पुनः एक महान राष्ट्र के रूप में उभर सके। स्वामी विवेकानन्द के सन्देश को ग्रहण करने से ही, जो उन्होंने श्रीरामकृष्ण से प्राप्त किया, भारत महान बन सकता है। अच्छा है हम जितना जल्द हो इस महान सन्देश को ग्रहण करें और इसी के अनुसार राष्ट्र के निर्माण का प्रयत्न करें। अन्यथा, हम यों ही निरर्थक अपनी शक्ति, अपना समय और प्रायः विध्वंसात्मक क्रियाओं द्वारा अपना समय नष्ट करते रहेंगे। यदि हम स्वामी जी के मार्ग का अनुसरण करते रहें और उन्होंने जिस महान आदर्श की हमें शिक्षा दी उसके अनुसार हम राष्ट्र के निर्माण का प्रयत्न करते रहें, तो राष्ट्र को एक आशा बँध सकेगी। एक बार स्वामी जी ने कहा था—"श्रीरामकृष्ण भारत हैं और भारत श्रीरामकृष्ण का है।" श्रीरामकृष्ण सम्पूर्ण भारत की एकत्व शक्ति हैं, और उनके ध्वज तले विभिन्न धार्मिक समुदाय इत्यादि, एक महान राष्ट्र के रूप में संगठित हो सकेंगे। वे एकत्व शक्ति हैं, राष्ट्र के केन्द्र हैं। श्रीरामकृष्ण द्वारा दिये गये और स्वामी जी द्वारा सम्पूर्ण संसार को उपदेशित किये गये महान आदर्श ही केवल भारत के पुनर्निर्माण कर सकेंगे। जितना शीघ्र हम उन्हें ग्रहण कर सकें उतना ही अच्छा है। स्वामी जी की हम सब पर कृपा हो कि हम उनके सन्देशों को ग्रहण कर सकें और जो मार्ग उन्होंने दिखया है, उसके अनुसार राष्ट्र के पुनर्निर्माण के कार्य में लग जायँ।

प्रस्तुति—डॉ० रामकिशोर प्रसाद
(छपरा)

अपने आप में विश्वास रखने का आदर्श ही हमारा सबसे बड़ा सहायक है। सभी क्षेत्रों में यदि अपने आप में विश्वास करना हमें सिखाया जाता और उसका अभ्यास कराया जाता, तो मुझे निश्चय है कि हमारी बुराइयों तथा दुःखों का बहुत बड़ा भाग आज तक मिट गया होता।

—स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द और महावीर हनुमान

—स्वामी शशांकानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम,
राँची (बिहार)

भगवान शंकर के हृदय में कभी क्षण भर के लिए भी यह संशय जाग्रत नहीं हुआ कि श्रीराम भगवान हैं कि नहीं।

भगवान श्रीराम को साधारण मनुष्य की भाँति आचरण करते हुए देखकर सभी के मन में संशय हुआ था किन्तु भगवान शंकर ने श्रीराम को जिस अवस्था में देखा वह थी

विरह विकल नर इव रघुराई। खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई॥

एक साधारण जीव की भाँति पत्नी विरह में विकल होकर राम और उनके भाई लक्ष्मण वन में माता जानकी को खोज रहे थे। किन्तु भगवान शंकर तो प्रभु की दिव्यलीला का रहस्य जानते थे कि परब्रह्म परमात्मा ही श्रीराम रूप में नर लीला कर रहे हैं। जो ऐसा न जानकर मोह वश श्रीराम को साधारण जीव समझते हैं वे तो मूर्ख हैं। वे संशययुक्त होकर दुखी होते हैं। परन्तु

अतिविचित्र रघुपति चरित जानहि परम सुजान। ते मतिमंद बिमोह बस हृदयँ धरहिं कछु आन॥

संभु समय तेहि रामहि देखा। उपजा हियँ अति हरषु विसेषा॥
भरि लोचन छबि सिंधु निहारी। कुसमय जानि न कीन्ह चिन्हारी॥

जय सच्चिदानन्द जगपावन। अस कहि चलेउ मनोजनावन॥
चले जात सिव सती समेता। पुनि पुनि पुलकत कृपा निकेता॥

भगवान शंकर ने श्रीराम को उस साधारण नर की भाँति पत्नी विरह में व्याकुल अवस्था में देखा तो हर्षित हो उठे। जिस प्रकार से कोई दर्शक किसी नाटक में कलाकार के अद्भुत नाट्य प्रदर्शन को देखकर प्रशंसा से भर जाता है, यहाँ भगवान शंकर भी अपने प्रभु को रंग मंच पर नाटक करते हुए उनकी कला प्रदर्शन की प्रशंसा में डूबकर हर्षित हो रहे थे। जी भरकर नेत्रों से प्रभु की अनन्त सौन्दर्य युक्त छवि को देखते रहे। "जग को पवित्र करने वाले प्रभु सच्चिदानन्द प्रभु की जय हो।" ऐसा कहकर भगवान शंकर सतीजी के साथ जा रहे थे और उनका शरीर बार-बार पुलकित हो रहा था।

यही तत्त्वतः प्रभु के अवतार रहस्य को जानने वाले भगवान शंकर, जब जब भगवान अवतार ग्रहण करते हैं, उनकी लीला में हाथ बटाने के लिए, प्रभु की सेवा करने के लिए इस पृथ्वी पर अवतीर्ण होते हैं।

वे ही भगवान श्रीराम के साथ हनुमानजी और श्री रामकृष्ण देव के साथ स्वामी विवेकानन्द जी के रूप में आए थे।

अब हम इन दोनों चरित्रों का अवलोकन कर उनके जीवनों में सादृश्य देखने की चेष्टा करेंगे। परन्तु उससे पहले देखें कि स्वामी विवेकानन्द जी के हृदय में अपने पूर्व अवतार हनुमान जी के प्रति क्या भाव था।

राम भक्तों के समक्ष जिस आदर्श चरित्र को भगवान श्री रामकृष्ण देव ने अपने दिव्य जीवन में चरितार्थ कर दिखाया था उसी दिव्य एवं महान चरित्र को स्वामी विवेकानन्द जी ने अपने जीवन में अपनाया था। "विवेकानन्द चरित" में श्री सत्येन्द्र नाथ मजूमदार लिखते हैं :

बचपन से ही उन्हें श्री रामचन्द्रजी के कार्य में अपने जीवन को अर्पित करनेवाले वीर भक्त हनुमान के अलौकिक कार्यों की कथाएँ सुनना बहुत अच्छा लगता था। माता भुवनेश्वरी देवी से उन्होंने सुना कि हनुमानजी अमर हैं और वे अभी भी जीवित हैं। तब से उन्हें देखने के लिए नरेन्द्र के प्राण छटपटाने लगे। एक दिन नरेन्द्र; स्तव कथा सुनने गए। कथाकार पण्डितजी नाना प्रकार की आलंकारिक भाषा में हास्यरस मिलाकर हनुमानजी के चरित्र का वर्णन कर रहे थे। ऐसे समय नरेन्द्र धीरे-धीरे उनके पास जा पहुँचे। बालक ने उनसे पूछा, "पण्डितजी आपने जो कहा कि हनुमानजी केला खाना पसन्द करते हैं और केले के बगीचे में ही रहते हैं, तो क्या मैं वहाँ जाकर उनके दर्शन कर सकूँगा ?" बालक ने किस गम्भीर विश्वास, किस परिपूर्ण आन्तरिकता के साथ यह प्रश्न पूछा। इसे समझने का अवसर या सामर्थ्य कथाकार पण्डितजी में न थी। उन्होंने हँसी में कह दिया कि बेटा, केले के बगीचे में ढूँढने पर तुम उन्हें पा सकते हो।"

नरेन्द्र फिर घर न लौटे। सचमुच वे मकान के पास वाले एक बगीचे में जाकर केले के पेड़ के नीचे बैठ गए और हनुमान जी की प्रतीक्षा करने लगे। काफी समय बीत गया पर हनुमान जी न आए। अन्त में लाचार होकर अधिक रात बीतने पर निराश हो वे घर लौटे। उलाहना देते हुए माता को सारी घटना सुनाकर उनसे इसका कारण पूछा। बालक के विश्वास के मूल पर आघात करना बुद्धिमती माता ने ठीक न समझा। उसके विषण्ण मुख मण्डल को चूमकर कहा, तुम दुःख न करो, श्रीरामजी के काम से कहीं दूसरी जगह गए होंगे किसी और दिन मिलेंगे। आशा मुग्ध बालक का मुख शान्त हुआ, उनके मुँह पर हंसी की रेखा आ गयी। इसके बाद बालक ने फिर कभी हनुमान जी के दर्शन के लिए चेष्टा की या नहीं यह तो हमें ज्ञात नहीं, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि हनुमान जी के प्रति गम्भीर श्रद्धा का भाव उनके मन में कभी लुप्त नहीं हुआ। उत्तरकाल में स्वामीजी ब्रह्मचर्य ग्रहण के अभिलाषी प्रत्येक युवक को महावीर के चरित्र को आदर्श बनाने के लिए कहा करते थे। दूसरों के लिए आत्मत्याग को अपना जीवन-व्रत बनाने वाले शिष्यों से दास्य भक्ति की जीती जागती मूर्ति श्री हनुमान जी की बात कहते कहते उनका मुख-मण्डल भावावेश से लाल हो उठता था। सिंह की तरह गरजते हुए वे बोल उठते, "चला दे भला देश भर में महावीर हनुमानजी की पूजा। इस दुर्बल हिन्दु-जाति के सामने इसी महावीर्य के आदर्श को रख। शरीर में शक्ति नहीं हृदय में साहस नहीं, क्या होगा मांस के इन लोदों से ? मैं चाहता हूँ, घर-घर में महावीर की पूजा हो।"

एक समय वे बेलुड़ मठ में श्री हनुमान जी की प्रस्तर मूर्ति बिठाना चाहते थे किन्तु उनकी यह इच्छा पूरी न हो पायी। हनुमानजी महाराज के चरित्र में एक ओर सेवा का भाव, दूसरी ओर तीनों लोकों को कंपा देने वाला सिंह विक्रम देखने को मिलता है। श्रीराम की सेवा में जीवन विसर्जन और रघुवीरजी का आदेश पालन करना ही जीवन का एकमात्र व्रत। हनुमान जी का जीवन तो श्री राममय था। उनके मन में राम, तन में राम, रोम-रोम में राम के अतिरिक्त और कुछ भी न था।

हाथों से श्रीराम का कार्य, जिह्वा पर श्रीराम का नाम, नेत्रों से निरन्तर श्री लक्ष्मण सहित श्री सियाराम दर्शन, मन में राम स्मरण, बुद्धि से रामगुणों का चिन्तन और श्रीराम के चरण कमलों में अपने अहं की शरणागति और विजय में विनय।

स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन में भी देखा जाता है कि सारे जीवन के लिए उन्होंने श्रीराम कृष्ण और माँ शारदा के प्रति दासत्व स्वीकार किया था।

श्रीरामकृष्ण देव का आदेश ही उनके जीवन का सेवा व्रत बना। श्रीरामकृष्णमय था स्वामीजी का जीवन। प्रतीत होता है कि श्रीरामकृष्ण सदा-सर्वदा उनके हृदय में ही विराजमान थे। श्रीराम-कृष्ण के लिए एवं उनके कार्य में सहायता देने के लिए अपनी समस्त इच्छाओं का उन्होंने विसर्जन कर दिया था।

श्री हनुमान चालीसा में हनुमान जी की महिमा गाई गयी है :

जय हनुमान ज्ञान गुन सागर। जै कपीस तिहुँ लोक उजागर॥

हनुमानजी महाराज ज्ञान और गुणों के सागर हैं एवं तीनों लोकों को अपने ज्ञान और गुण से आलोकित कर रहे हैं।

स्वामी विवेकानन्द जी के ज्ञान की महिमा तो स्वयं भगवान श्रीरामकृष्ण देव के मुख से सुनने को मिलती है— (लीला प्रसंङ्ग III-101-5)

"वह यथार्थ ज्ञानी है। ध्यान करने के लिए बैठते ही उसे ज्योति दर्शन होता है, उसे मैं यों ही प्यार नहीं करता।"

मैंने देखा केशव (विश्व विख्यात ब्रह्म समाज के धर्म नेता) जिस प्रकार एक शक्ति के द्वारा संसार में विश्व विख्यात हुआ है, नरेन्द्र के भीतर उस प्रकार की अठारह शक्तियाँ पूर्ण मात्रा में विद्यमान है।

फिर देखा केशव और विजय का हृदय दीप-शिखा के समान ज्ञान के प्रकाश से उज्ज्वल बना हुआ है। बाद में नरेन्द्र के भीतर देखा ज्ञान सूर्य ने उदित होकर माया-मोह रूप अज्ञान को वहाँ से अपसारित कर दिया है। ज्ञान रूप खड्ग से वह समस्त माया बन्धनों को काट डालता है। इसीलिए महामाया उसे किसी प्रकार वश में नहीं ला सकती।

इसी प्रकार नरेन्द्रनाथ की बहुमुखी प्रतिभा और गुणों के बारे में श्रीरामकृष्ण कहा करते थे— "नरेन्द्र सा एक भी लड़का मुझे अब तक नहीं दिखायी पड़ा। जैसा गाने बजाने में, वैसा पढ़ने-लिखने में, वैसा ही बातचीत में, और फिर धर्म विषय में भी, ध्यान करते-करते भोर हो जाता है, होश नहीं रहता।"

उधर हनुमानजी महाराज तो भगवान राम के दूत है :

रामदूत अतुलित बलधामा। अंजनि पुत्र पवन सुत नामा ॥

अतुलित बल सम्पन्न श्री हनुमान जी तो भगवान राम के दूत हैं जिन्होंने समुद्र पार कर श्रीराम का संदेश पहुँचाया था और सारी लंका को जला दिया था।

इधर स्वामी विवेकानन्द जी भगवान श्रीरामकृष्ण के दूत हैं जिन्होंने समुद्र पार कर भगवान श्री रामकृष्ण का सदेश सुनाया था और अपने हृदय में प्रज्वलित ज्ञानाग्नि से सारे यूरोप एवं अमरीका को जला दिया था।

हनुमान जी भगवान राम के द्वारपाल हैं।

रामदुआरे तुम रखवारे। होत न आज्ञा बिन पैठारे ॥

स्वामी विवेकानन्दजी भगवान श्रीरामकृष्ण के द्वारपाल हैं। उनकी अनुमति न होने तक श्रीरामकृष्ण तक पहुँचना कठिन है। श्रीरामकृष्ण ने कहा था : तू कन्धे पर चढ़ाकर मुझे जहाँ भी खुशी से ले जाएगा मैं वहीं पर रहूँगा चाहे वह झोपड़ी हो या वृक्षों का झुण्ड। श्रीरामकृष्ण ने जिन सत्यों को अपनी साधना द्वारा पाया और अपनी वाणी से कहा उन्हें स्वामीजी ने ठीक-ठीक समझा था और अपने जीवन में आत्मसात किया था। श्रीरामकृष्ण को यदि समझना हो तो विवेकानन्दजी के माध्यम से उन्हें समझा जा सकता है।

श्री श्री रामकृष्ण लीला प्रसंग में श्रीमत् स्वामी शारदानन्दजी महाराज कहते हैं।

(लीला प्रसंङ्ग III-194-95)

श्रीरामकृष्ण देव के अद्भत जीवन के अलौकिक कार्यों और उपदेशों का ठीक-ठीक आशय ग्रहण और प्रकाश करने में जितना वे समर्थ थे, कोई दूसरा वैसा नहीं था। इसी समय से नरेन्द्र नाथ से श्रीरामकृष्ण देव के उपदेशों की व्याख्या सुनकर हमलोग कभी-कभी स्तम्भित होकर सोचते थे—अच्छा यह उपदेश हमने भी तो श्रीरामकृष्ण देव से सुने हैं, किन्तु उनके भीतर ऐसा गम्भीर अर्थ है, यह नहीं समझ सके थे। उदाहरणार्थ वैसे एक उपदेश का उल्लेख हम यहाँ करते हैं—

सन् 1884 ई० में किसी समय हमारे एक मित्र ने दक्षिणेश्वर पहुँच कर देखा, श्रीरामकृष्ण देव कमरे में भक्तों से घिरे बैठे हैं। श्रीयुत नरेन्द्रनाथ भी वहाँ उपस्थित है। प्रसङ्गवश वैष्णव धर्म की बात उठी। उस मत का सार मर्म सब लोगों को संक्षेप में समझाकर श्रीरामकृष्णदेव ने कहा, 'तीन विषयों का पालन करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहने का उपदेश उस मत में है—नाम में रुचि, जीव के प्रति दया और वैष्णव पूजन। जो नाम है, वही ईश्वर है—नाम नामी को अभिन्न जानकर निरन्तर अनुराग के साथ नाम लेना चाहिए। भक्त और भगवान् कृष्ण और वैष्णव को अभिन्न समझकर साधु-भक्तों की पूजा और वन्दना करनी चाहिए और कृष्ण का ही यह जगत संसार है, ऐसी धारणा हृदय में रखकर ही 'सब जीवों पर दया' (प्रकाश करनी चाहिए) "सब जीवों पर दया" कहते ही श्रीरामकृष्ण देव समाधिस्थ हो गए। कुछ छणों के अनन्तर बाह्य दशा में अवस्थित होकर कहने लगे, "जीव पर दया-

जीव पर दया ? धत् तेरी, कीटाणु कीट होकर तू जीव पर दया करेगा ? दया करने वाला तू कौन है ? नहीं नहीं, जीव पर दया नहीं-शिव ज्ञान से जीव सेवा।"

भावाविष्ट श्रीरामकृष्ण की ये बातें सभी ने सुनी थीं, किन्तु उसका गूढ़ मर्म उस समय कोई भी नहीं समझ सका था। केवल नरेन्द्रनाथ ही उस दिन श्रीरामकृष्ण देव के भावभंग के पश्चात् बाहर आकर कहने लगे, "आज ठाकुर की बात से कैसा अद्भुत प्रकाश दिखायी पड़ा। जिस वेदान्त ज्ञान को लोग शुष्क, कठोर और ममता रहित समझते हैं, उसे भक्ति से सम्मिलित करके कैसे सहज, सरस और मधुर प्रकाश का उन्होंने प्रदर्शन करा दिया। अद्वैत ज्ञान लाभ करने के लिए संसार और समाज त्यागकर वन में जाना होगा और भक्ति-प्रेम आदि कोमल भावों को हृदय से उखाड़कर सदैव के लिए चित्त को निसंग रखना होगा, ऐसी बात ही तो अब तक सुनता आया हूँ।

किन्तु आज ठाकुर ने भावावेश में जैसा बताया, उससे जान गया कि वन के वेदान्त को घर में लाया जा सकता है, संसार के सभी कार्यों में उसका प्रयोग किया जा सकता है। मनुष्य जो काम करते हैं करें, उसमें हानि नहीं, केवल हृदय से यह बात सबसे पहले समझ लेना चाहिए कि ईश्वर ही जीव और जगत् के रूप में अपने सामने प्रकट होकर विराजमान हैं। जीवन के प्रतिक्षण वह जिनके सम्पर्क में आता है, जिन्हें प्यार करता है, जिन पर श्रद्धा, सम्मान या दया करता है, या जो उसके शत्रु हैं उसे घृणा करते हैं, वे सभी उन्हीं के अंश हैं—वे स्वयं ही हैं। संसार के सभी व्यक्तियों को यदि वह शिवरूप समझ सके, तो अपने को बड़ा समझकर उनके प्रति द्वेष, क्रोध, दम्भ करने का अवसर ही कहाँ है ? इस रीति से सभी को शिव समझकर जीवों की सेवा करने से चित्त शुद्ध होकर थोड़े समय में अपने को चिदानन्द ईश्वर का अंश और शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव समझ सकेगा।

"ठाकुर के इस उपदेश से भक्ति पथ में भी विशेष प्रकाश दिखायी पड़ता है। जब तक ईश्वर को सर्वभूतों में नहीं देखा जाता, तब तक यथार्थ भक्ति या पराभक्ति लाभ करना साधक के लिए सम्भव नहीं होता। शिव या नारायण ज्ञान से जीवों की सेवा करने से ईश्वर को सभी में व्याप्त देखकर यथार्थ भक्ति लाभ करके भक्त साधक अल्पकाल में ही कृतार्थ हो सकेगा—इसमें कोई सन्देह नहीं।"

"भगवान ने यदि अवसर दिया तो आज जो सुना इस अद्भुत सत्य का संसार में सर्वत्र प्रचार करूँगा—पण्डित, मूर्ख, धनी-निर्धन ब्राह्मण चाण्डाल सभी को सुनाकर मुग्ध करूँगा।"

शारदानन्दजी कहते हैं : लोकोत्तर श्रीरामकृष्ण देव इस प्रकार समाधि राज्य में निरन्तर प्रविष्ट होकर ज्ञान प्रेम योग और कर्म के सम्बन्ध में अदृष्ट पूर्व प्रकाश प्रतिक्षण लाकर मनुष्य के जीवन पथ को समुज्ज्वल करते थे। परन्तु हमारा दुर्भाग्य है कि हम उनके उपदेश उस समय नहीं समझ सके थे, केवल मनस्वी नरेन्द्रनाथ ही उन देववाणियों को यथार्थ रूप से हृदयंगम कर समय-समय पर प्रकट करते हुए हमें स्तम्भित कर देते थे।

इस तरह हम देखते हैं कि अवतार की महिमा को प्रकाशित करने में तथा उनके गूढ़ तत्त्वों को प्रकट कराने में बजरंगबली हनुमानजी महाराज और स्वामी विवेकानन्द दोनों ही सक्षम थे।

दोनों ही भगवान शंकर के अवतार हैं।

मानव का वास्तविक स्वरूप

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
सम्पादक, वेदान्त केसरी
रामकृष्ण मठ, चेन्नई

[१९९३ में लिखित इस लेख की उपयोगिता को ध्यान में रखकर इसे पुन: प्रकाशित किया जा रहा है। —सं०]

११ सितम्बर १८९३ का दिवस, स्वामी विवेकानन्द के शिकागो विश्व धर्म महासभा में सम्मिलित होने की शताब्दि के रूप में सारे भारत में मनाया जा रहा है। इस अवसर पर सारे भारत में सभाओं एवं समारोहों, भाषणों एवं लेखों, आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के माध्यम से स्वामी जी की जीवनी एवं उपदेशों का प्रचार एवं प्रसार हो रहा है। स्वामीजी के संदेश के राष्ट्र निर्माण, समाज सुधार एवं चरित्र निर्माणकारी पक्ष पर विशेष बल दिया जा रहा है। ये सारे सन्देश वस्तुतः स्वामीजी के मूलभूत आध्यात्मिक संदेश के ही विभिन्न पहलू हैं। स्वामीजी के राष्ट्रोत्थान विषयक उपदेशों की महानता एवं उनकी वर्तमान काल में प्रासंगिकता को स्वीकार करते हुए ऐसे बहुत कम व्यक्ति ही हैं जिन्होंने उनके मौलिक आध्यात्मिक सन्देश की ओर दृष्टिपात किया है, या उसे गहराई से समझना चाहा है। लेकिन स्वामीजी का आध्यात्मिक संदेश उनके राष्ट्र के प्रति आह्वान से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है, तथा जिस प्रकार स्वाधीनता से ३० वर्ष बाद देर से ही सही राष्ट्र ने उनके राष्ट्रोत्थान के सिद्धान्तों को स्वीकार किया है, उसी तरह कभी न कभी हमें उनके मूलभूत आध्यात्मिक दर्शन को भी स्वीकार करना होगा।

स्वामी विवेकानन्द का सन्देश :

स्वामी विवेकानन्द ने स्वयं कहा है, "मेरा सन्देश कुछ ही शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है, वह है, मानव जाति को उसके देवत्व की शिक्षा देना तथा यह बताना कि उसे जीवन के प्रत्येक स्तर पर किस प्रकार अभिव्यक्त किया जाय।" इस संक्षिप्त सदेश का विस्तार हम विवेकानन्द साहित्य के दस खण्डों में तथा इसकी व्यवहारिक अभिव्यक्ति स्वयं उनके जीवन में पाते हैं। प्रथम, मानव को उसके देवत्व की शिक्षा देना तथा द्वितीय उसकी अभिव्यक्ति के उपाय बताना। प्रथम पक्ष सैद्धान्तिक है, द्वितीय व्यावहारिक। राष्ट्र-निर्माण समाज विकास, चरित्र निर्माण आदि इस सन्देश के उत्तरार्द्ध से सम्बन्धित है। लेकिन पूर्वार्द्ध के सैद्धान्तिक पक्ष को समझे बिना हम उनके दूसरे व्यावहारिक पक्ष के महत्व को हृदयंगम नहीं कर पायेंगे। मानव के देवत्व की भूमिका के रूप में पाश्चात्य चिन्तकों के मानव के स्वरूप विषयक विचार जानना आवश्यक है।

पाश्चात्य चिन्तकों के अनुसार मानव स्वरूप :

प्राणि शास्त्र Biology के अनुसार मानव का जातिगत नाम Homo Spiens है। वह एक ऐसा

पशु विशेष है जिसमें Neo Cerebrum नामक मस्तिष्क का वह भाग जो बुद्धि तथा आत्म चेतना से सम्बन्धित है, अन्य जानवरों से अधिक विकसित है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह मानव अन्य पशुओं की अपेक्षा स्वचालित क्रियाओं तथा Instincts द्वारा सबसे कम मात्रा में परिचालित होता है। प्राणिशास्त्र के इस सिद्धान्त को कि मानव एक 'पशु' विशेष है, लगभग सभी पाश्चात्य मनीषियों ने स्वीकार किया है, तथा वे अपनी अपनी मान्यता के अनुसार इस पशु की अन्य पशुओं से विशेषता दिखाने का प्रयत्न करते हैं। पुरातन पाश्चात्य दार्शिनक अरस्तू Aristotle, मानव में राजनतिक चिन्तन की क्षमता होने के कारण उसे Political Animal या, राजनैतिक पशु कहते है अमेरिकन विचारक बेन्जामिन फ्रेंकलिन के अनुसार मानव यंत्रादि का निर्माण करने में समर्थ होने के कारण Tool making Animal है।

पाश्चात्य मनीषीगण मानव को शरीर एवं मन का एक संघात मात्र मानते हैं। इन्हें वे क्रमशः सोमा (Soma) तथा Psyche कहते हैं, जो एक दूसरे से परस्पर सम्बन्धित हैं तथा एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। कुछ लोग मन को प्राधान्य देते हैं, तो अन्य दूसरे शरीर को अधिक महत्त्व देते हैं। आधुनिक भौतिकवादियों विशेषकर चिकित्सा शास्त्र के विद्वद्जन Medical Materialists) मानव को आर० एन० ए० तथा डी० एन० ए० (RNA DNA) नामक रासायनिक परमाणुओं एवं अणुओं से निर्मित एक अत्यन्त पेचीदी मशीन मानते हैं तथा मानव की समस्त शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं को चुम्बकीय तथा विद्युतीय तरंगों एवं रासायनिक परिवर्तनों का परिणाम ही समझते हैं। उनके मतानुसार मानव के मन में उठ रहे शुभाशुभ विचार तथा भावनाएँ मस्तिष्क से उसी तरह पैदा होती है जिस तरह शरीर की विभिन्न ग्रंथियों से रस पैदा होते हैं।

आधुनिक विश्व की विचारधारा को अत्यधिक प्रभावित करने वाले दार्शनिक-मनोवैज्ञानिक-चिकित्सक फ्रायड ने भौतिकवादियों के उपर्युक्त सिद्धान्त को स्वीकार कर उसके आधार पर अपना मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। मानव, शरीर क्रिया द्वारा परिचालित एक यंत्र है (Phisiologically driven Homne Machine) जिसकी शारीरिक आवश्यकताएँ, विशेषकर यौन सुख की, पूर्ण होनी चाहिए। मानव एक कामुक पशु (Sexual Animal) है जो काम एवं आत्म संरक्षण के प्रमुख प्रवृत्तियों द्वारा परिचालित होता है। अगर उसकी काम वृत्ति को विकसित एवं संतुष्ट नहीं किया जाय तो मानव में विकृतियाँ (Complexes) पैदा हो जाती है, यह फ्रायड का मत है। अतः उसके मनोविश्लेषण का लक्ष्य एक स्वस्थ मानव का विकास करना है, तथा तद्नुरूप समाज का गठन करना है, जो यौन प्रेरणाओं का दमन न करे।

विख्यात समाजशास्त्री कार्ल मार्क्स ने भी मानव को समझने में अपना विशेष योगदान किया है। उसके अनुसार मानव एक सामाजिक पशु है। लेकिन अन्य पशुओं से उसमें यह विशेषता है कि जहाँ पशु अपने को अपनी क्रियाओं से भिन्न नहीं जान सकता, वही मानव अपने को अपनी क्रियाओं से भिन्न जान सकता है। इसे वे स्वाधीन, चेतन क्रियाशीलता (Free conscious activity) की संज्ञा देते हैं, मानव को परिचालित करने वाले कुछ स्थायी हेतु आहार तथा मैथुन शारीरिक आवश्यकताओं पर निर्भर करते हैं। लेकिन इनके अतिरिक्त सामाजिक प्रभाव द्वारा निर्मित ईर्ष्या लोभादि सापेक्ष कारणों द्वारा भी परिचालित होता है। वह अपनी सभी इन्द्रियों द्वारा उसके विषयों को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। मार्क्स के अनुसार मानव तभी तक मानव कहला

सकता है, जब तक वह सक्रिय रूप से अन्य मानवों, प्रकृति तथा जगत् के साथ सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न करता है। इसके अभाव में वह पशुतुल्य या रोगी मानव हो जाता है। इसके साथ ही मार्क्स आर्थिक हेतु को अपने सिद्धान्त में विशेष महत्व देते हैं।

भारतीय दर्शन के अनुसार मानव का स्वरूप :

भारतीय मनीषियों ने मानव की परिभाषा एवं पशु से विशेषत्व स्पष्ट रूप से प्रकट किया है।

आहार-निद्रा-भय-मैथुनश्च समानमेतत्पशुभिर्नराणाम्। धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मस्य हीनाः पशुभिः समानाः ॥

अर्थात् आहार निद्रा भय और मैथुन मानव एवं पशु में समान रूप से विद्यमान हैं। मानव में धर्म विशेष है। अगर धर्म न हो तो मानव पशु के तुल्य ही है। ये धर्म दो प्रकार के कहे गये हैं। शंकराचार्य अपने गीता भाष्य में कहते हैं। द्विविधो हि वेदोक्तो धर्मः प्रवृति लक्षणः निवृति लक्षणश्च। वर्ण तथा आश्रय के शास्त्रोक्त विधि एवं निषेधों का पालन करते हुए अर्थ एवं काम की पूर्ति का प्रयत्न करना प्रवृत्ति धर्म कहलाता है। एवं विधि निषेधों का अतिक्रमण कर परम-पुरुषार्थ मोक्ष के लिए प्रयत्न करना निवृति धर्म कहलाता है। मोक्ष का यह भारतीय सिद्धान्त एक अन्य दार्शनिक सिद्धान्त पर आधारित है, जिसके अनुसार प्रत्येक मानव, यही नहीं, प्रत्येक प्राणी का वास्तविक स्वरूप एक नित्य शुद्ध, बुद्ध मुक्त, सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा है, जो देह और मन से भिन्न है। स्वामी विवेकानन्द इस आत्मा को वास्तविक मानव की संज्ञा देते हैं। इन दोनों का सम्बन्ध कठोपनिषद् में एक रथ के रूपक की सहायता से बहुत सुन्दर ढंग से समझाया गया है।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धि तु सारथि विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयां स्तेषु गोचरान।
आत्मोन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥

अर्थात् आत्मा, को रथी तथा शरीर को रथ जानो। बुद्धि सारथी है, मन लगाम तथा इन्द्रियाँ इस रथ के घोड़े हैं जो विषय रूपी मार्ग पर विचरण करते हैं। आत्मा, इन्द्रिय और मन को संयुक्त रूप से मनीषीगण भोक्ता कहते हैं।

श्रीरामकृष्ण के अनुसार जिसे अपने शरीर का ज्ञान हो गया है वही मनुष्य या मान-हुंश है। इसी सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द का कथन है कि मानव तभी तक मानव है, जब तक वह अन्तः प्रकृति तथा वहिः प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के लिए संघर्ष करता है।

मानव सम्बन्धी मान्यताओं का सारांश :

उपर्युक्त कथन से यह बात स्पष्ट हो जायेगी कि मानव के स्वरूप, उसको परिचालित करने वाली प्रेरणाएँ एवं उसके चरम लक्ष्य सम्बन्धी पाश्चात्य एवं भारतीय मान्यताओं में महत्वपूर्ण एवं मौलिक अन्तर है।

पाश्चात्य विचारकों के अनुसार मानव एक पशु विशेष अथवा एक यंत्र एवं देह-मन का संघात मात्र है। वह आहार, निद्रा, मैथुन एवं आत्म-संरक्षण की शारीरिक आवश्यकताओं एवं स्वचालित प्रेरणाओं Instincts द्वारा परिचालित होता है। इसके अतिरिक्त अर्थ संग्रह एवं समाज के साथ सक्रिय सम्बन्ध स्थापित करना भी उसकी विशिष्ट प्रेरणाएँ है जो मार्क्स के अनुसार मानव को पशु से श्रेष्ठ बनाती है। फ्रायड के अनुसार मानव का

पूर्ण अकुरित यौन विकास होने पर वह स्वस्थ अथवा पूर्ण मानव कहला सकता है, तथा यही उनके मनोविज्ञान एवं उस पर आधारित सामाजिक व्यवस्था का लक्ष्य है। मार्क्स मानव की मूलभूत शारीरिक आवश्यकताओं, आहार एवं मैथुन की तृप्ति के महत्व को स्वीकार करने के साथ ही मानव के समाज के साथ सक्रिय सम्बन्ध स्थापन को समाज व्यवस्था का लक्ष्य बताते हैं।

भारतीय दर्शन के अनुसार मानव का वास्तविक स्वरूप सत्-चित आनन्द आत्मा है तथा देह मन इससे भिन्न लेकिन सम्बन्धित प्रातिभासिक मानव है। प्रत्येक आत्मा स्वरूपतः पूर्ण अथवा ब्रह्म स्वरूप है तथा यही पूर्णत्व निरन्तर अभिव्यक्त होने का प्रयत्न कर रहा है। भारतीय दर्शन चार पुरुषार्थों को स्वीकार करता है—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। जब तक मानव सामाजिक नियमों की उपेक्षा कर विधि निषेधों को माने बिना स्वेच्छापूर्वक काम एवं अर्थ प्राप्ति का प्रयत्न करता है, तब तक वह पशु तुल्य ही बना रहता है। लेकिन सामाजिक विधि निषेधों रूपी नियंत्रणों को स्वीकार उनके अनुसार अर्थ एवं काम के उपभोग में प्रवृत्त होने पर वह मानव के स्तर पर आरोहण करता है, तथा इनको भी त्याग कर जब वह मोक्ष कामी हो अन्त में अपने स्वरूप को पहचानता है, तब वह देव कहलाता है। इस अन्तर्निहित देवत्वपूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द तथा पूर्ण शक्ति की अभिव्यक्ति ही भारतीय दर्शन के अनुसार जीवन का लक्ष्य है। मानव के इस दिव्य स्वरूप तथा उसकी पूर्णता की अभिव्यक्ति की संभावनाओं का उपदेश देना ही स्वामी विवेकानन्द का जीवन व्रत था।

मानव के स्वरूप के ज्ञान का महत्व :

मानव के देवत्व के उपदेश को स्वामी विवेकानन्द द्वारा अपने सन्देश में प्राधान्य प्रदान करने का कारण यह था कि हमारा जीवन तथा आचरण हमारी अपनी सम्बन्धी मान्यता पर निर्भर करता है। यदि हम अपने को अपनी शारीरिक एवं मानसिक आवश्यकताओं एवं वासनाओं द्वारा परिचालित पशु समझेंगे तो सदा उसी तरह का जीवन यापन करते रहेंगे। यदि हम स्वयं को एक सामाजिक प्राणी समझेंगे, तो हमारा व्यवहार समाज के साथ सम्बन्ध करने तक ही सीमित रहेगा। लेकिन यदि हम अपने को नित्य शुद्ध बुद्ध चैतन्य आत्मा मानेंगे तो हम तदनुरूप व्यवहार करेंगे। इस बात को समझाने के लिए स्वामी विवेकानन्द भेड़ों के झुण्ड के साथ पले एक शेर शावक का उदाहरण देते थे।

एक बार एक शेरनी ने भेड़ों के एक झुण्ड पर आक्रमण किया। वह गर्भवती थी और दुर्भाग्य से कूदने के आघात से उसकी मृत्यु हो गयी, लेकिन मृत्यु के ठीक पहले उसने शेर शावक को जन्म दिया। यह शावक भेड़ों के झुण्ड में ही पलने तथा बड़ा होने लगा। वह भेड़ों की तरह ही घास खाता, मिमियाता तथा उन्हीं की तरह भयभीत होकर भागता था। कुछ दिनों में शेर शावक एक बड़ा शेर हो गया लेकिन उसका व्यवहार भेड़ सा ही बना रहा। एक दिन इस झुण्ड पर एक दूसरे शेर ने आक्रमण किया। वह यह देखकर दंग रह गया कि भेड़ों के झुण्ड में एक शेर भी है जो उन्हीं की तरह डरकर भाग रहा है। मौका पाकर जंगल का नवागन्तुक शेर अपने को भेंड़ समझ रहे शेर को जबरदस्ती पकड़ कर जंगल में ले गया। उसे नदी के किनारे ले जाकर जंगली शेर ने कहा कि वह भेड़ नहीं, शेर है। पानी में उसके चेहरे की परछाईं की अपने चेहरे से समानता दिखाकर उसने शेर शावक के भ्रम को दूर करने का प्रयत्न किया। उसके मुंह में मांस का टुकड़ा डालकर उसे चखने को कहा और शेर की तरह दहाड़ना सिखाया। अन्त में शेर शावक अपने को भेड़ होने के भ्रम को त्याग कर बड़े शेर के साथ जंगल में चला गया। उसका भय तथा भेड़ सदृश व्यवहार भी परिवर्तित हो गया।

इस सन्दर्भ में मुझे एक घटना याद हो आयी है। मेरे मित्र के दो छोटे पुत्र जिनका नाम विवेक और गिरीश था, एक दिन खेल रहे थे। सारा परिवार श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द का भक्त था। अतः ये बालक एक दूसरे के नाम के पीछे आनन्द जोड़कर एक दूसरे को पुकार रहे थे तथा स्वयं को संन्यासी मानकर आनन्द मना रहे थे। अचानक छोटा भाई गिरीश किसी कारण रोने लगा। विवेक कुछ आश्चर्य चकित हो माँ के पास जाकर बोला, 'माँ गिरीशानन्द कभी रो सकता है ?" मानो वह बालक कहता है कि जब तक उसका भाई गिरीश नामक सामान्य बालक था, तब तक तो भले ही रोये, पर जब वह आनन्द नाम से युक्त संन्यासी हो गया है--तब क्या उसे रोना शोभा देता है ? यही बात भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कही थी। "क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।" वह क्लीवता दुर्बलता तुझे शोभा नहीं देती, क्योंकि तू तो नित्य शुद्ध मुक्त आत्म स्वरूप है। यही बात स्वामी विवेकानन्द ने भारतवासियों तथा पाश्चात्य देशवासियों को विभिन्न प्रकार से कही थी। सदियों की दासता की बेड़ियों में जकड़े जो भारतवासी उन पर शासन करने वाली जाति की ठोकरें खा खाकर अपना स्वरूप भूल बैठे थे—मानो भूल गये थे कि वे मनुष्य भी है, तथा यही समझने लगे थे कि गुलामी करना तथा ठोकर खाना ही हमारा जीवन है, ऐसे भारतवासी को स्वामी जी ने उनकी पुरातन परम्परा का स्मरण दिलाते हुए ऋषियों की सन्तान कहकर पुकारा। भोग को ही अपना सर्वस्व मानने वाले पाश्चात्य देशवासियों को उन्होंने अमृतस्य पुत्राः कहकर सम्बोधित किया—यह याद दिलाने के लिए कि भोग ही जीवन का सर्वस्व नहीं है, तथा यह कि वे अमरत्व के अधिकारी, आनन्द स्वरूप आत्मा हैं।

देवत्व के उपदेश की समस्याएँ :

लेकिन आत्मा के स्वरूप का उपदेश देना एवं उसको ठीक-ठीक ग्रहण कर पाना इतना आसान नहीं है। यदि कोई व्यक्ति हमें यह कहे कि हम दिव्य हैं, ब्रह्म हैं या ईश्वर स्वरूप हैं तो हम यही समझेंगे कि वह व्यक्ति प्रलाप कर रहा है। इसीलिए उपनिषदों में कहा गया है :

श्रवणायापि बहुभियो न लभ्यः
शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।
आश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः॥

अर्थात् यह (आत्म तत्व) बहुत से लोगों को तो सुनने को भी नहीं मिलता। जो सुनते हैं उनमें से भी बहुत से उसे जान नहीं पाते। (क्योंकि) इस तत्व का कोई ज्ञाता तथा उसे लाभ करने वाले, दोनों व्यक्ति आश्चर्य मय होते हैं। ऐसे विरले आश्चर्यमय व्यक्ति द्वारा कुशल प्रकार से शिक्षा दिये जाने पर ही इस तत्त्व का ज्ञान होता है। यह समस्या सामान्य जन के लिए तो क्या श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द जैसे महापुरुषों के साथ भी परिलक्षित होती है। उन्हीं की मुलाकात एवं वार्तालाप के रोचक वृत्तान्त से इसे अच्छी तरह समझा जा सकता है।

दक्षिणेश्वर मन्दिर में सर्वप्रथम श्रीरामकृष्ण व स्वामी विवेकानन्द (उस समय नरेन्द्रनाथ दत्त) की पहली भेंट के समय श्रीरामकृष्ण स्वामीजी को एकान्त में ले जाकर हाथ जोड़कर कहने लगे कि वे नर ऋषि हैं जो जगत हिताय पृथ्वी पर अवतरित हो गये। यह बात सुनकर स्वामी जी अचंभित हो गये तथा मन ही मन सोचने लगे कि मैं तो विश्वनाथ दत्त का पुत्र नरेन्द्र नाथ दत्त हूँ, और ये सन्त मुझे नर ऋषि का अवतार कहते हैं। ये सन्त होते हुए भी थोड़े से असन्तुलित मस्तिष्क के हैं, इसीलिए ऐसी बहकी बातें करते हैं। उस

दिन तो वे कुछ समय वार्तालाप कर लौट गये। उसके बाद जब वे पुनः दक्षिणश्वर गये तो श्रीरामकृष्ण ने अचानक उन्हें स्पर्श कर दिया। उस दैवी शक्तिशाली स्पर्श के फलस्वरूप स्वामीजी के सामने से सारा जगत विलीन होने लगा, यहाँ तक कि उनकी स्वयं की देह, मन तथा अहंकार भी लीन होने लगे। तब वे घबड़ाकर चिल्ला उठे, "महाराज, आप यह क्या कर रहे हैं। मेरे माता पिता जो है!" वस्तुतः श्रीरामकृष्ण उन्हें उनके वास्तविक स्वरूप का प्रत्यक्ष अनुभव कराना चाहते थे। लेकिन उनका देह बोध तथा मैं अमुक का पुत्र हूँ। अपने स्वरूप के सन्दर्भ में यह धारणा इतनी प्रबल थी कि वे न तो श्रीरामकृष्ण के कथन को ही स्वीकार कर सके और न ही उनके स्पर्श द्वारा प्रदत्त प्रत्यक्ष अनुभूति को ही सहन कर सके। श्रीरामकृष्ण ने मुस्कुराते हुए उन्हें पुनः स्पर्श कर दिया जिससे वे प्रकृतिस्थ हो गये। इसके बाद श्रीरामकृष्ण ने उनको देवत्व की शिक्षा देने की तीसरी पद्धति अपनायी। अपने व्यवहार से इस बात को स्वामी जी के मन में बिठाया। वे कभी स्वामीजी को उनकी व्यक्तिगत सेवा नहीं करने देते थे तथा सदा इसी प्रकार का व्यवहार करते थे, मानो वे किसी दैवी महापुरुष के साथ व्यवहार कर रहे हों।

श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द के बीच घटी घटनाओं एवं उनके सम्बन्धों का उपर्युक्त वर्णन आत्मा के देवत्व को समझने की कठिनाई के साथ ही उसके उपदेश के विभिन्न उपयोगों का दिग्दर्शन कराता है। श्रीरामकृष्ण जैसे उत्तम गुरु जो आत्म तत्व का प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत कर सकें विरले होते हैं। अधिकांश मनुष्य के लिए इस तत्व का पुनः पुनः श्रवण, निदिध्यासन ही एकमात्र उपाय है। इसमें प्रतिदिन सुबह शाम सब समय यह सोचना चाहिए कि हम देह मांस के लोथड़े मात्र नहीं हैं, बल्कि अजर अमर नित्य शुद्ध बुद्ध एवं ज्ञान स्वरूप आत्मा हैं।

हमारी वर्तमान आवश्यकता :

मानव के देवत्व का उपदेश आज हमारी सबसे बड़ी आवश्यकता बन गई है। स्वामी विवेकानन्द चाहते थे कि इसका उपदेश आबाल, वृद्ध स्त्री पुरुष, धनी निर्धन सभी को दिया जाय। इसका परिणाम यह होगा कि एक किसान अच्छा किसान होगा, एक विद्यार्थी अच्छा विद्यार्थी होगा तथा एक शिक्षक श्रेष्ठतर शिक्षक बनने का प्रयत्न करेगा।

राष्ट्रीय स्तर पर भी मानव के दिव्य स्वरूप के सिद्धान्त को स्वीकार करना महत्त्वपूर्ण है। ऐसा करने पर हम जनता के लिए भोग सामग्री जुटाने तथा उनकी आर्थिक अवस्था की उन्नति मात्र के लिए प्रयत्नशील न होकर एक ऐसे समाज के गठन में तत्पर होंगे, जहाँ नैतिक आदर्शों का पालन हो सके, जहां प्रत्येक मानव अपने स्वधर्म का पालन कर सके तथा जिस समाज में प्रत्येक मानव को अन्तर्निहित देवत्व की अभिव्यक्ति का समुचित अवसर प्राप्त हो। आर्थिक समृद्धि उस उच्चतम लक्ष्य की उपलब्धि का एक सोपान मात्र हो, चरम लक्ष्य नहीं।

□

यदि मानवजाति के आज तक के इतिहास में महान् पुरुषों और स्त्रियों के जीवन में सब से बड़ी प्रवर्तक शक्ति कोई है, तो वह आत्मविश्वास ही है। जन्म से ही यह विश्वास रहने के कारण कि वे महान् होने के लिए ही पैदा हुए हैं, वे महान् बने।

—स्वामी विवेकानन्द

५ जनवरी : गुरु गोविन्द सिंह के ३३२वें प्रकाशोत्सव पर विशेष।

गुरु गोविन्द सिंह : सच्चे मानवतावादी

—प्रो० लाल मोहर उपाध्याय, पटना

यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि पटना सिटी (पटना साहिब) में जिस तरह श्री गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज का आज से ३३२ वर्ष पहले प्रकाश (जन्म) हुआ था। उसके एक तरफ मस्जिद थी तो दूसरी तरफ मंदिर भी था। स्वाभाविक है कि गुरुजी के कानों में संगत द्वारा गुरुवाणी कीर्तन के साथ-साथ मंदिर से आ रही घंटियों की आवाज तथा मस्जिद से आ रही अ-जान की आवाज भी पड़ी होगी। यह एक दैवी संयोग ही था। इसीलिए तो श्री गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज ने जीवन का मूल मंत्र दिया।

हिन्दू तुरक कोउ राफजी इमाम साधी
मानस की जात सबै एकै पहचान बो

इतना ही नहीं करीम और रहीम में एक ही ज्योति का दर्शन करने की प्रेरणा देते हुए उन्होंने डंके की चोट पर कहा कि सम्पूर्ण विश्व का गुरु एक ही ब्रह्म है :

करता करीम सोई राजक रहीम उहा
दूसरो न भेद कोई भूल भरम मानबो
एक ही की सेव, सबहीं सो गुरुदेव एक,
एक ही स्वरूप सबै, एक ही ज्योति जानबो

सच तो यह है कि अल्लाह एवं ईश्वर तथा कुरान एवं पुरान में तत्वतः कोई भेद नहीं है।

गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज ने पथ-भ्रष्ट जनता को सही मार्ग दिखाने के लिए धर्म, जाति, देश-भाषा के कारण उत्पन्न विभिन्नता समाप्त कर भावात्मक एकता स्थापित करने के उद्देश्य से यह समझाया कि मंदिर-मस्जिद, पूजा-नमाज, देव-गन्धर्व, हिन्दू-मुसलमान में मूलतः कोई भेद नहीं है। यह केवल बाहरी दिखावा है। इतना ही नहीं आत्मा भी परमात्मा का ही अंश है—

जैसे एक आग से कानू का कोट आग उठै,
न्यारे-न्यारे हुई के फेरि आग में मिलाहिगे
जैसे एक धूर ते अनेक धूर पूरत हैं,
धूर के कानू का घोर धूर ही समाहिगे
जैसे एक नदी से तरंग कोटि उपजत है,
पानी के तरंग सबे पानि ही समाहिगे।
जैसे विश्व रूप से अभूत भूत प्रकट हुई,
ताहिते उपज सबै ताहि में समाहिगे

इसलिए तो श्री गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज ने समय की मांग के अनुसार बैसाखी १६९९ के दिन केशमद (आनन्दपुर साहिब, पंजाब) में खालसा पंथ का सृजन कर अछूत एवं दलित वर्ग के स्वाभिमान को बढ़ाया और अपने चमत्कारी व्यक्तित्व के प्रभाव से चिर शोषित और चिर उपेक्षित जन साधारण को राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन का दुर्जेय योद्धा बनाकर दिखला दिया कि मनुष्य जाति एक है—इसमें कोई भेद नहीं समझना चाहिए।

उन्होंने खालसा पंथ की सृजन करते वक्त जाति-पांति एवं प्रदेश का भेद मिटाकर नये नाम रखे जो इस प्रकार है—भाई दयाराम (खत्री, लाहौर) का नाम हो गया भाई दया सिंह, भाई धर्मचन्द (जाट, दिल्ली) का नाम हो गया भाई धर्म सिंह, भाई मुहकमचन्द (धोबी, द्वारका)

का नाम हो गया भाई हिम्मत सिंह, भाई साहबचन्द (नाई, बिदर) का नाम हो गया भाइ साहिब सिंह। श्री गोविन्द राय जी हो गये गुरु गोविन्द सिंह जी।

इस तरह उन्होंने विश्व के समक्ष लोकतन्त्र और समाजवाद का एक अद्यतन दृश्य उपस्थित किया। इसमें दो मत नहीं कि जाति-पाति एवं छुआ-छूत का रोग समाज की शक्ति को घुन के कीड़े की तरह खाता जा रहा था। ऐसी विषम परिस्थिति में श्री गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज ने अकेले ही युग की चुनौती को स्वीकार किया और अपने असीम साहस, दृढ़ संकल्प और आश्चर्यजनक प्रतिभा से समाज की प्रबल धारा को मोड़ दिया। उन्होंने संगत (सहचिंतक) पंगत (सहयोजन-लंगर) की अनुपम रीति को आगे बढ़ाकर जनसाधारण को एकता का मन्त्र दिया;

साच कहूँ सून लेहु सबै जिन प्रेम किये तिनही प्रभु पायो
मानस की जात सबै एकै पहचान बो
देहि शिवा वर मोहिं एहै शुभ कर-मन ते न टरौ

यही कारण है कि गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज के व्यक्तित्व का तुलना साधु टी० एल० वासवानी ने इस प्रकार की है—'उनमें अतीत में अवतरित सभी ईश्वर पुत्रों के गुण, विद्यमान थे। गुरु नानकदेव जी महाराज की विनम्रता, ईसा मसीह की तरह भरी मासूमियत, महात्मा बुद्ध का आत्मज्ञान, हजरत मुहम्मद का लबलबाता जोश, भगवान श्री कृष्ण जी का सूर्यव्रत प्रताप, भगवान राम जैसा मर्यादा पुरुषोत्तम तथा शहंशाहों वाली शान श्री गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज में थी।

श्री गुरु गोविन्द सिंह जी की त्याग भावना भी कम प्रेरणादायक नहीं है। इसीलिए तो सुप्रसिद्ध आर्यसमाजी लाला दौलत राय ने लिखा है—'महाभारत में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा था—सबसे महान त्यागी वह है, जो दूसरों की भलाई के लिए रणभूमि में अपने प्राण त्यागे। गुरु गोविन्द सिंह जी ने दूसरों के लिए न केवल अपने प्राण न्योछावर किये वरन् जो कुछ भी अपना था, वह सारा देश को अर्पण कर दिया। अपनी प्यारे संतानों (चारों पुत्र) को भी धर्म पर कुर्बान कर दिया। अपना सर्वस्व देश के लिए लुटा दिया। इसीलिए श्री गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज से बड़ा त्यागी भारत में कौन है? उर्दू के वरिष्ठ पत्रकार लाला रणवीर जी ने अपनी पुस्तक 'युग पुरुष' में लिखा है—'गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज ने भवानी भगवती चंडिका को उठाया तो किसी धर्म या सम्प्रदाय के विरुद्ध नहीं प्रत्युत हिंसा, अत्याचार, अन्याय, पाप और दासता का सर्वनाश करने के लिए।

इतना ही नहीं भारतीय संस्कृति एवं हिन्दू धर्म की रक्षा में उनका योगदान अपूर्व रहा है। यह एक अभूतपूर्व घटना है कि मात्र नौ वर्ष की उम्र में और वह भी माता-पिता का इकलौता पुत्र होते हुए भी उन्होंने हिन्दू धर्म की रक्षा एवं तिलक जनेऊ को जबरन समाप्त करने के विरोध में उन्होंने अपने पिता श्री गुरु तेग बहादुर जी महाराज को ११ नवम्बर १६७५ ई० को चाँदनी चौक दिल्ली में शहीद होने के लिए निवेदन किया जिनकी यादगारी में निर्मित राजधानी गुरुद्वारा शीशगंज एवं गुरुद्वारा रकाबगंज मानवीय एकता के ज्वलंत उदाहरण है। उन्होंने डंके की चोट पर कहा है।

सकल जगत में खालसा पंथ गाजै
जगै धर्म हिन्दुन सकल धुंध भाजै

भारतीय संस्कृति एवं धर्म के हिमायती के रूप

में श्री गुरु गोविन्द सिंह जी को कभी नहीं भुलाया जा सकता है।

सोई भवानी नाम कहाई जिन यह सगली सृष्टि बनायी

मरव काल है पिता हमारा, देवि कालिका मात हमारा,

श्री गुरु गोविन्द सिंह जी की सम दृष्टि का ज्वलंत उदाहरण युद्ध के मैदान में भी देखा जा सकता है। युद्ध के मैदान में उनका एक शिष्य कन्हैया सिख एवं मुसलमान दोनों पक्षों के घायल अपाहिजों को पानी पिला रहा है। इस पर सब कुछ सिख सिपाही गुरु गोविन्द सिंह जी के पास जाकर कन्हैया की शिकायत करते हैं कि वह अपने दुश्मन मुसलमान सिपाहियों को भी पानी पिलाता है। इस पर गुरु जी ने स्पष्टीकरण दिया—यह हमारा कर्तव्य है—मानवता के लिए जरूरी है। पानी पिलाने की बात क्या वह उन घायलों की मरहम पट्टी भी किया करे। यही हमारा धर्म है।

वास्तविकता तो यह है कि गुरु गोविन्द सिंह जी का मानवतावाद सार्वकालिक है। उनकी लड़ाई इस्लाम एवं मुसलमानों के खिलाफ नहीं थी वरन् मुगल साम्राज्य द्वारा किये जा रहे धर्म पर कुठाराघात, जुल्म एवं अत्याचार के खिलाफ थी। उन्होंने स्पष्ट लिखा है—

दशम कथा भागोत की भखा करि बनाई
अवर वासना नाही प्रभु धर्म जुध के चाई

धन्य जियो तिह को जग में
मुख ते हरि चित में जुध विचारे

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने सच लिखा है—

'धन्य है, वह देश, जहाँ गुरु गोविन्द सिंह जी उत्पन्न हुए थे। उन्होंने इस देश की जनता की अपार शक्ति का उद्घाटन किया। उनका स्मरण करके हम आज भी नयी प्रेरणा और शक्ति पा सकते हैं—पा रहे हैं।'

★

असफलता की चिन्ता मत करो; वे बिलकुल स्वाभाविक हैं, वे असफलताएँ जीवन के सौन्दर्य हैं। उनके बिना जीवन क्या होता? जीवन में यदि संघर्ष न रहे, तो जीवित रहना ही व्यर्थ है—इसी संघर्ष में है जीवन का काव्य। संघर्ष और त्रुटियों की परवाह मत करो। मैंने किसी गाय को झूठ बोलते नहीं सुना, पर वह केवल गाय है, मनुष्य कभी नहीं। इसलिए इन असफलताओं पर ध्यान मत दो, ये छोटी छोटी फिसलनें हैं। आदर्श को सामने रखकर हजार बार आगे बढ़ने का प्रयत्न करो। यदि तुम हजार बार भी असफल होते हो, तो एक बार फिर प्रयत्न करो।

—स्वामी विवेकानन्द

मानव का परम पुरुषार्थ

ब्रह्मलीन स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज

यह सभी का अनुभव है कि अपने को देह मानकर कभी किसी का मन संसार से अलग नहीं हो पाता। कारण कि शरीर की संसार से जातीय एकता होती है और गुणों की भिन्नता है। तभी मन संसार का चिन्तन करता है। यदि विवेक पूर्वक अपने को देह न स्वीकार किया जाय तो मन स्वभाव से ही चिन्तन-रहित हो जाता है और जिससे वास्तविक जातीय तथा स्वरूप की एकता है, उसमें विलीन हो जाता है।

सार यह निकला कि हम जैसा अपने को मान लेते हैं, उसीके अनुरूप हमारा मन हो जाता है। इस प्रकार देहाभिमानी का मन संसार के प्रेम में, जिज्ञासु का मन तत्व ज्ञान में लग जाता है और प्रेमी अपने प्रेमास्पद के स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।

भक्ति और मुक्ति

जब देहाभिमान मिटकर प्रेम के साम्राज्य में प्रवेश होता है, तब इस संदेह के लिये कोई स्थान ही नहीं रहता कि प्रेम में इन्द्रियजन्य विलास है—जो मोह और आसक्ति को उत्पन्न करता है! प्रेम के साम्राज्य में जिन भावों को स्वीकार किया जाता है, वे उत्तरोत्तर प्रेम की ही वृद्धि करते हैं। वहाँ भोग मोह और आसक्ति का कोई स्थान नहीं है। कारण कि प्रेम-तत्त्व अगाध तथा अनन्त है। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि भक्ति कहो अथवा ज्ञान—ये दोनों ही मानव जीवन के आवश्यक अङ्ग हैं। ये दो होते हुए भी एक हैं और एक होते हुए भी दो। दो हैं साधन-दृष्टि से और एक हैं साध्य-दृष्टि से। साधन-रूप ज्ञान की परावधि प्रेम में है और साधन रूप भक्ति की परावधि स्वरूप-साक्षात्कार में है।

अनन्त तथा नित्य-विन्मय-जीवन की अभिलाषा, अगाध—अनन्त प्रेम की लालसा और निर्दोष जीवन की अभीप्सा तथा तत्त्व-जिज्ञासा मानव-जीवन में स्वभाव से विद्यमान है। जैसे यदि तुममें कोई दोष हो तो सभी कहेंगे, तुम दोषी क्यों हो? परन्तु यदि कोई दोष न हो तो कोई न कहेगा कि निर्दोष क्यों हो? कारण कि 'क्यों' उसी में लगता है जो अस्वाभाविक हो! जो स्वाभाविक हो उसमें 'क्यों' नहीं लगता। जैसे यह कोई न कहेगा कि तुम सत्य क्यों बोलते हो? पर यदि कोई झूठ बोले तो सभी कहेंगे कि तुम झूठ क्यों बोलते हो?

दिव्य मानव-जीवन

जैसे यदि कोई श्रमी तथा सदाचारी है तो उससे कोई नहीं कहेगा कि तुम श्रमी और सदाचारी क्यों हो? किंतु यदि कोई आलसी या दुराचारी हो तो सभी कहेंगे कि तुम आलसी और दुराचारी क्यों हो? यदि कोई प्रसन्न तथा शान्त हो तो उससे कोई नहीं कहेगा कि तुम प्रसन्न तथा शान्त क्यों हो? लेकिन यदि कोई खिन्न तथा अशान्त हो तो सब कहेंगे कि तुम खिन्न और अशान्त क्यों हो? यदि कोई स्वस्थ तथा सबल हो तो कोई नहीं कहेगा कि स्वस्थ क्यों हो? लेकिन यदि रोगी और निर्बल हो तो सभी कहेंगे कि रोगी, निर्बल क्यों हो? इसी प्रकार यदि कोई प्रेमी तथा योगी है तो कोई नहीं कहेगा कि प्रेमी क्यों हो? पर यदि कोई मोही तथा भोगी है तो सभी कहेंगे कि तुम मोही तथा भोगी क्यों हो?

इससे यह भलीभाँति विदित हो जाता है कि मानव-जीवन में श्रम, संयम, सदाचार, सेवा-त्याग, निर्दोषता, योग, प्रेम, ज्ञान, भक्ति, मुक्ति इत्यादि दिव्यताएँ स्वाभाविक हैं और इसके विपरीत जितने दोष हैं, वे सब अस्वाभाविक हैं।

आकृति का नाम मानव नहीं

अब यदि कोई यह कहे कि हमें तो अपने जीवन में अनेक दोष तथा निर्बलताओं का दर्शन होता है, तो क्या हम मानव नहीं हैं? तो कहना होगा कि साधन रूप मानव तो सभी हैं, लेकिन सिद्ध-रूप मानव वे ही हैं जो निर्दोषता तथा निर्वैरतापूर्वक, मुक्ति और भक्ति प्राप्त करते हैं। अतः अस्वाभाविकता से स्वाभाविकता की ओर गतिशील होना ही वास्तविक मानवता है। और उसे प्राप्त करना ही मानव का परम पुरुषार्थ है।

(कल्याण से साभार)

रामकृष्ण-मिशन

पो०-बेलुड़मठ, जिला-हावड़ा, पश्चिम बंगाल-७११२०२

१९९७-९८ के लिए कार्यकारिणी समिति की रिपोर्ट का सारांश

रामकृष्ण मिशन की ८९वीं वार्षिक साधारण सभा बेलुड़ मठ में २० दिसम्बर १९९८ को अपराह्न ३.३० बजे आयोजित की गयी।

देशभर में एवं विदेशों में भी रामकृष्ण मिशन की शताब्दी मनायी गयी। एक शानदार समारोह के माध्यम से १ मई १९९७ को कलकत्ते के नजरूल मंच पर भारत के उप-राष्ट्रपति के द्वारा उसका उद्घाटन किया गया। फरवरी १९९८ में बेलुड़ मठ में समापन समारोह मनाया गया जिसके अन्तर्गत अखिल भारतीय युवा सम्मेलन एवं अखिल भारतीय भक्त सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिनमें क्रमश: ७ हजार एवं १० हजार प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

गुजरात प्रान्त के पोरबन्दर शहर में एक नयी शाखा खोली गयी। जयपुर केन्द्र में एक नये डिस्पेन्सरी भवन का उद्घाटन किया गया। साथ ही वाराणसी एवं कटिहार केन्द्रों में भ्रम्यमान चिकित्सा इकाइयों का शुभारम्भ किया गया। पश्चिम बंगाल स्थित नरेन्द्रपुर केन्द्र को भारत सरकार की ओर से उसके सौर ऊर्जा कार्यक्रम के लिए प्रथम पुरस्कार एवं उसके बायो-गैस कार्यक्रम के लिए विशेष पुरस्कार प्रदान किये गये।

इस वर्ष के दौरान करीब १.३८ करोड़ रुपये खर्च करके मिशन ने देश के विभिन्न भागों तथा साथ ही बंगला देश एवं श्रीलंका में बृहत् पैमाने पर राहत एवं पुनर्वासन के कार्य किये जिनमें लगभग ६ लाख लोग लाभान्वित हुए। महाराष्ट्र प्रान्त के लातुर जिले में कुछ वर्ष पहले शुरू की गयी सर्वतोमुखी ग्रामीण-विकास-योजना में और प्रगति हुई। आन्ध्र प्रदेश के पूर्वी गोदावरी जिले में तीन तूफान-आश्रय-गृह सह विद्यालय भवन का निर्माण किया गया। उसी जिले में वृद्ध गोतमी नदी के ऊपर एक पुल का शिलान्यास किया गया।

निर्धन छात्रों को छात्रवृत्ति, वृद्ध, बीमार एवं असहाय लोगों को आर्थिक सहायता इत्यादि कल्याण-कार्यों में १.५० करोड़ रुपये व्यय हुए।

९ अस्पतालों एवं भ्रम्यमान चिकित्सा-सेवा सहित ९९ चिकित्सा केन्द्रों के द्वारा करीब ५० लाख लोगों की चिकित्सा-सेवा की गयी, जिसके तहत १६.८३ करोड़ रुपये खर्च हुए।

हमारे शिक्षा संस्थानों के द्वारा, बाल-बिहार से लेकर स्नातकोत्तर स्तर तक १७३५०५ छात्रों को शिक्षा प्रदान की गयी, जिनमें ४६२९२ छात्राएं थी। शिक्षा कार्य के लिए ४८.०३ करोड़ रुपये खर्च किये गये।

६.६२ करोड़ की लागत पर कई ग्रामीण एवं आदिवासी विकास-योजनाओं का भी कार्यान्वयन किया गया।

इस अवसर पर अपने सदस्यों एवं बन्धुओं के प्रति उनके हार्दिक सहयोग एवं निरन्तर सहायता के लिए हम आन्तरिक धन्यवाद एवं सच्ची कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

(स्वामी स्मरणानन्द)
महासचिव

स्वामी लोकेश्वरानन्द का परलोकगमन

कलकत्ता, ३१ दिसम्बर। रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ साधु एवं विश्व प्रसिद्ध "रामकृष्ण मिशन इंस्टिट्यूट ऑव कल्चर" के सचिव स्वामी लोकेश्वरानन्द का आज प्रातः काल ब्रह्मलोक गमन हो गया उनकी आयु ८७ वर्ष की थी। विगत कुछ दिनों से वे उदर रोग से पीड़ित थे। गत सोमावार, २८ दिसम्बर को उन्हें कलकत्ते के प्रमुख चिकित्सालय कोठारी मेडिकल सेन्टर (के०एम०सी०) में भर्त्ती कराया गया। अचानक उसी दिन उनकी स्थिति खराब हो गयी और उन्हें आठ सदस्यीय मेडिकल टीम की देखरेख में जीवन अवलम्बक प्रणाली में रखा गया। किन्तु उनकी हालत में सुधार नहीं हो सका और वे गुरुवार, ३१ दिसम्बर के प्रातः ७ बजकर २५ मिनट पर ब्रह्मलीन हो गये।

स्वामी लोकेश्वरानन्द प्राच्य एवं पाश्चात्य साहित्य तथा दर्शन के मर्मज्ञ एवं कृतविद्य शास्त्रज्ञ थे। उन्होंने देश-विदेशों में वेदान्त एवं रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा का प्रचार-प्रसार किया था। पश्चिमी देशों विशेषकर रूस की उन्होंने एकाधिक बार यात्रा की एवं रामकृष्ण भावान्दोलन के प्रचार में महत्तम भूमिका निभायी। लगभग तीन वर्षों तक वे अद्वैत आश्रम, मायावती में कार्यरत रहे तथा लम्बे अर्से से इंस्टिट्यूट ऑव कल्चर के सचिव रहे। वे १९९३ ई० में आयोजित शिकागो धर्म सम्मेलन शताब्दी समारोह, १९९७ ई० में आयोजित 'स्वामी विवेकानन्द भारत प्रत्यागमन शताब्दी सहारोह' जैसे विराट आयोजनों के सफल संयोजक थे।

वे विलक्षण वाग्मी एवं मर्मस्पर्शी लेखक एवं 'बुलेटिन ऑव द रामकृष्ण मिशन इंस्टीट्यूट ऑव कल्चर' के सम्पादक थे। उनको पुस्तकों में प्रेक्टिकल स्पिरिचुयल्टी, रेलिजन, एण्ड कल्चर, स्टडीज ऑन श्रीरामकृष्ण, द वे टु गॉड आदि प्रमुख हैं। उन्होंने ईश, कठ, केन, माण्डुक्य, मुण्डक, प्रश्न, श्वेताश्वतर, तैत्तिरीय, छान्दोग्य आदि उपनिषदों का सरल अँग्रेजी में प्रामाणिक अनुवाद भी किया था।

भारत के राष्ट्रपति श्री के० आर० नारायणन, उपराष्ट्रपति श्री कृष्णकान्त एवं प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने उनके निधन पर गहरा शोक प्रकाश किया है।

रामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम, छपरा

छपरा, १० दिसम्बर। स्थानीय रामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम, में जगन्माता श्रीसारदा देवी का पावन अवतरण-उत्सव बड़े उल्लास एवं उत्साह पूर्वक अनुष्ठित किया गया। विशेष पूजा एवं हवन आदि के अतिरिक्त प्रायः तीन सौ नर-नारी भक्तों ने बैठकर प्रसाद ग्रहण किया। डॉ० केदारनाथ लाभ ने श्रीमाँ सारदा देवी के जीवन और संदेश पर ४५ मिनटों का एक प्रेरक प्रवचन दिया और भक्तों, विशेषकर महिलाओं से माँ के जीवन से प्रेरणा लेकर उनके संदेशों को अपने जीवन में उतारने का आग्रह किया। इस अवसर पर ११ दरिद्र हिन्दू-मुस्लिम महिलाओ को आश्रम की ओर से भोजन तथा आश्रम के उपाध्यक्ष डॉ० नागेश्वर प्रसाद मिश्र, एम०डी० के हाथों १-१ शीशी केश-तेल एवं एक-एक नयी साड़ी का वितरण किया गया जिसकी लोगों ने काफी सराहना की।

श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम

रामकृष्ण निलयम, जयप्रकाश नगर

छपरा-८४१ ३०१ (बिहार)

दूरभाष : 06152-22639

स्वामी विवेकानन्द प्रतिमा-स्थापन

नम्र निवेदन

प्रिय महोदय/महोदया,

आपको यह सूचित करते हुए हमें परम प्रसन्नता हो रही है कि पश्चिमी जगत में भारतीय धर्म और अध्यात्म की विजय पताका लहराने के उपरान्त दिग्विजयी स्वामी विवेकानन्द के भारत प्रत्यागमन के शताब्दी-महोत्सव वर्ष की स्मृति में स्वामी विवेकानन्द की आदमकद कांस्य-प्रतिमा की स्थापना करने का शुभ संकल्प छपरा के नागरिकों ने लिया है। छपरा स्वामीजी के गुरुभाई स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) के जन्म-जिला का मुख्यालय है।

मनुष्य-निर्माण, चरित्रगठन, सामाजिक न्याय, सर्वधर्म समभाव एवं भारत के पुनर्निर्माण के सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द की प्रतिमा एक विद्युत-तरंग का कार्य करेगी एवं वर्तमान पीढ़ी के लिए प्रेरणा का प्रकाशपुंज सिद्ध होगी—यह निर्विवाद है।

अतएव, आपसे हमारा नम्र निवेदन है कि इस याज्ञिक कार्य में उदारतापूर्वक दान देकर हमारे विनम्र प्रयास का सहभागी बनने की कृपा करें। इस महनीय कार्य में बड़े से बड़ा दान भी अल्प है और छोटे से छोटा दान भी महत्तम है।

स्वामीजी की कृपा आप पर निरन्तर बरसे—यही प्रार्थना है।

प्रेम और शुभकामनाओं सहित—

स्वामी विवेकानन्द चरणाश्रित

आपका

(डॉ० केदारनाथ लाभ)

सचिव

चेक या ड्राफ्ट रामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम, छपरा (बिहार) के नाम से भेजने की कृपा करें। नकद रुपये मनीआर्डर से भेजे जा सकते हैं।

एक निवेदन

भगवान श्री रामकृष्णदेव, माँ सारदा तथा स्वामी विवेकानन्द के चरण रेणु से तीर्थीकृत तथा स्वामी विवेकानन्द स्मृतिविजड़ित आकर्षण केन्द्र ज्योति लिंग बाबा वैद्यनाथ की इस पुनीत नगरी देवघर में रामकृष्ण संघ द्वारा परिचालित प्रथम शिक्षण संस्थान रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ की स्थापना सन् 1922 में हुई। भगवान श्री रामकृष्ण देव के अन्यतम पार्षद श्रीमत् स्वामी तुरीयानन्दजी महाराज से अनुप्राणित तथा स्वामी विवेकानन्द के शिक्षादर्शों पर आधारित 75 वर्ष पूर्व प्रारम्भ की गई यह शिक्षण संस्थान आज पूरे भारतवर्ष में विख्यात है। रामकृष्ण संघ के द्वितीय अध्यक्ष परमपूजनीय श्रीमत्स्वामी शिवानन्दजी महाराज ने भविष्यवाणी की थी—'इस विद्यापीठ के माध्यम से भविष्य में बहुत महान कार्य सम्पन्न होगा, इसका भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल है।'

विद्यापीठ के बहुमुखी कर्म-प्रवाह में आर्थिक अवस्था से विपन्न 400 छात्रों के लिए आज 'विवेकानन्द बालकेन्द्र' मुख्य इकाई के रूप में कार्यरत है जिसमें निःशुल्क शैक्षिक तथा क्रीड़ा संबंधी एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था है। इस अनुन्नत वर्ग को ही नवीन भारत का आधार बनाते हुए स्वामीजी ने कहा था—

"एक नवीन भारत निकल पड़े। निकले हल पकड़कर, किसानों की कुटी भेदकर, मछुए, माली, मोची, मेहतरों की झोपड़ियों से। निकल पड़े बनियों की दुकान से, भुजवा के भाड़ से, कारखाने से, हाट से, बाजार से। निकले झाड़ियों से, पहाड़ों—पर्वतों को भेदते हुए।' इस वाणी को मद्देनजर रखते हुए 'सबसे पीछे पड़े हुए, सबसे नीचे दबे हुए' वर्ग को अपने विनम्र भाव से शिक्षित करने के प्रयास में 'विवेकानन्द बाल केन्द्र' अनवरत संलग्न है।

संप्रति इन छात्रों की यथोक्त शिक्षा के लिए एक स्थायी भवन की नितान्त आवश्यकता है जिसकी अनुमानित लागत 10 लाख रुपये है। अतः रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर की ओर से मैं इस महान एवं पवित्र कार्य को सम्पन्न करने के लिए आप उदारचेताओं से सहयोग की महती प्रार्थना करता हूँ। इति।

निवेदक

स्वामी सुवीरानन्द

सचिव

रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर

नोट :—1. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर के नाम से ही चेक या ड्राफ्ट भेजे जाएँ।

2. रामकृष्ण मिशन को दिया गया दान धारा 80 [G] के अनुसार आयकर मुक्त है।

भगवान श्रीरामकृष्णदेव के शिष्य
स्वामी सारदानन्दजी द्वारा लिखित
भगवान श्रीरामकृष्णदेव की बृहत् जीवनी

श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग

तीन खण्डों में मूल्य रु. १०५/-

भगवान श्रीरामकृष्णदेव का
अपने शिष्यगण, भक्त तथा
दर्शनार्थियों के साथ वार्तालाप

श्रीरामकृष्णवचनामृत

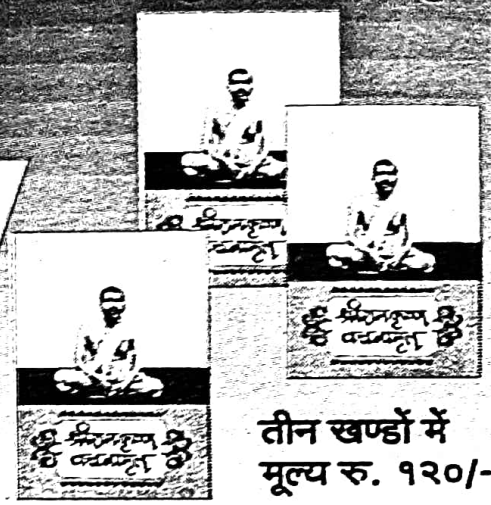

तीन खण्डों में
मूल्य रु. १२०/-

स्वामी गंभीरानन्दजी द्वारा लिखित
स्वामी विवेकानन्दजी की
संपूर्ण विस्तृत जीवनी

युगनायक विवेकानन्द

तीन खण्डों में मूल्य रु. १४०/-

स्वामी विवेकानन्द कृत योगविषयक पुस्तकें

ज्ञानयोग
मूल्य रु.२५.००

राजयोग
मूल्य रु.२०.००

कर्मयोग
मूल्य रु.१२.००

भक्तियोग
मूल्य रु.१२.००

प्रेमयोग
मूल्य रु.१५.००